गुरू कृपा से प्रभु मिलन

लेखक –
पूज्यपाद गुरुदेव श्री श्री १००८
महामण्डलेश्वर स्वामी भगवान देव परमहंस जी महाराज

© All Rights Reserved

विषय सूची

विषय	पष्ठ संख्या
१ दो शब्द	३
२ अपने घर चल	४
३ काम अपना करो जाई (पराए काम क्यों फँसना)	६
४ निगुरा कोउ न मिले, पापी मिलो हजार	२०
५ नाम–शब्द की महिमा	३३
६ तीन कृपाओं का संगम	३६
७ अधिकारी बनो	३६
८ गुरु–शिष्य का अनूठा सम्बन्ध	४६
६ गुरु चरण रज कृपा	५३
१० गुरु और शिष्य निर्माण	५६
११ गुरु कृपा के लिए दीक्षा–श्रद्धा जरूरी	६७
१२ गुरू महिमा के भजन	७८
१३ गुरू आरती	८४
१४ अखिल भारतीय धर्म सभा के नियम	८५

दो शब्द

सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार।
लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखावन हार।।
कबीर ते नर अंध है, गुरु को कहते और।
हरि रुठे गुरु ठोर है, गुरु रुठे नहीं ठोर।।

मानव जीवन का परम लक्ष्य है – अपने स्वरुप को जानना प्यारे प्रीतम के दर्शन करना। ध्येय की प्राप्ति के लिए बुद्धि को दिशा चाहिए – मार्ग चाहिए। उसकी प्राप्ति के लिए अष्टांगयोग, मंत्रयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, सुरत–शब्द योग, लययोग, कुण्डलिनी योग आदि अनेक मार्ग है। किसी एक का अवलम्बन लेकर मंजिल पर पहुंचा जा सकता है। किन्तु गुरु कृपा सरलतम व सर्वश्रेष्ठ रास्ता है। यह राजमार्ग है इसमें न कोई भय है, न कोई विघ्न है। सर्व सहज मार्ग है। इसमें केवल शिष्य को पूर्ण आत्मसमर्पण करना पड़ता है। पूरा गुरुमुख बनना पड़ता है। केवल शरीर का ही समर्पण नहीं, प्रत्युत मन, बुद्धि, चित्त, अह्म का भी समर्पण है। गुरु की रजा में, मौन में, आज्ञा में, मरजी में, इच्छा में सत् शिष्य को अपनी इच्छा मिलानी पड़ती है। गुरु के प्रति भगवद्‌बुद्धि, अचलनिष्ठा श्रद्धा, पूर्णविश्वास और अपने अह्म का समर्पण बस यही है मुख्य विशेषताएं, अलौकिक गुण, जो शिष्य में चाहिए। तपस्या की भट्टी में जल कर उर–आंगन को भी स्फटिक मणि की तरह करना पड़ता है। बस आगे गुरु पर छोड़ दें। गुरु कृपा की ऐसी अजस्र वर्षा होगी कि संसारजाल – वासनाओं, कुसंस्कारों, अज्ञान के कचरें को बहा देगी और शाश्वत आनन्द के रुप में प्रभु शक्ति आत्मा के रूबरू हो जाएगी। कोई छुपाव नहीं होगा। आत्मा–परमात्मा एक हो जाऐंगे। जीवन निहाल हो जाएगा। हम न हंस कर सीखें हैं, न रोकर सीखें हैं। जो कुछ भी सीखें है, सत्‌गुरु के होकर सीखें हैं।

यह छोटी सी पुस्तिका रुपी सुमन सत्‌गुरु प्यारे के श्री चरणों में समर्पित।

वनीत :

– स्वामी भगवान देव

राष्ट्रीय अध्यक्ष

अखिल भारतीय धर्मसभा (पंजीकृत)

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

ॐ

यस्य स्मरण मात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयं।
सः एव सर्व सम्पत्तिः तस्मात् सम्पूजयेद् गुरुम्। (गुरु गीता)

जैसे सूर्यनारायण के स्मरण मात्र से दिव्य प्रकाशपु ज मनश्चक्षुओं के सामने उपस्थित हो जाता है, वैसे ही सत्गुरु प्यारे का नाम लेने मात्र से स्वतः ज्ञान का प्रकाश प्रगट हो जाता है। वे शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानता, विवेक, वैराग्य, दया, क्षमा, श्रद्धा आदि सर्व अलौकिक गुणों की खान है। वे वन्दनीय है, पूजनीय है, उपासनीय है। उनकी श्रद्धापूर्वक सेवा करने से गुरुकृपा स्वतः अन्तःकरण में फूट पड़ती है। सद् शिष्य को ब्रह्मस्थ कर मालामाल कर देती है। ऐसी बख्शिश पाने का कोई विरला ही अधिकारी शिष्य मिलता है। मैं ऐसे क्षेत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु को कोटि–कोटि नमन करता हूँ। वे नरपशु से मानव, मानव से देवता और देवता से ब्रह्म बनाते हैं।

बलिहारी गुरु आपने दिउहाड़ी शत बार।
जिन मानव से देवता किया, करत न लागी बार। (आदि ग्रन्थ)

"अपने घर चल"

हम वासी उस देश के जहाँ अलखपुरुष दातार।
भगवान देव अमी झर रहा ज्योति जगे निराधार।
यत्र ज्योतिर जस्रं यस्मिन लोके स्वर्हितमा (ऋग्वेद ६–१३–७)
न तद्भास्यते सूर्यो न शशांको न पावकः
यदगत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। (गीता १४–६)

जिस देश में अखण्ड ज्योति जग रही है। रिमझिम–रिमझिम अमी रस बरस रहा है। जहाँ आनन्द ही आनन्द है। माया, काल वहाँ फटक नहीं सकते। दुःख–शोक का नाम–निशान नहीं है। वहाँ पहुँच कर संसार में वापस नहीं लौटना पड़ता। वह है हमारा दीवाना देश, अविनाशी घर। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अग्नि आदि वहाँ पहुँच नहीं सकते। उस प्रीतम के चैतन्य से सूर्यादि देवता प्रकाशित होते हैं।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

महरम हो सो जाने रे साधो ऐसा देश हमारा।
वेद कतेव पार नहीं पावत कहन सुनन से न्यारा।।
बिन बादल जहाँ बिजली चमके, बिन सूरज उजियारा।
बिना साज वहाँ बाजा बाजे, मुरली बीन सितारा।
रिमझिम–रिमझिम अीम रस बरसे ज्योति जगे निराधारा।
माया काल वहाँ नहीं पहुँचे, वह दुनियाँ से न्यारा।
ओ प्यारी आत्मन् ! संसार तेरा घर नहीं, रहना यहाँ दो चार दिन।
कर याद अपने राज्य का, स्वराज्य निष्कंटक जहाँ।

संसार तेरा घर नहीं है। यह माया का देश है। यह बार–बार जन्मता मरता है। इसका आदि भी है और अन्त भी है। यहाँ रोग, शोक, चिन्ता, क्लेश, दुःख, दरिद्रता, वद्धावस्था का संकट, काम–क्रोध–लोभ–मोह, अहंकार की धमा चौकड़ी, शारीरिक–मानसिक बिमारियों का तनाव, अविद्या, अस्मिता, राग, नेष, अभिनिवेश आदि पांचों क्लेश, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक आदि त्रिविध तापों के ज्वालामुखी पर्वत धधक रहे हैं। मौत का सर्वत्र ताण्डव नत्य हो रहा है। भूकम्पों, तूफानों ने अपने भयानक झटकों से जीव मात्र को हिला कर रख दिया है। विषय पदार्थ – स्त्री, पुत्र, धन–वैभव, कार, कोठी, हवाई जहाज, हैलीकाप्टर, सम्पत्ति, जायदाद, कल–कारखाने, राज्य, मान–सम्मान, रुप, सौंदर्य, मोहक खाद्य, पेय पदार्थ आदि क्षणिक सुख देने वाले देखने में सुन्दर लगते हैं, किन्तु वे देखते–देखते दुःखों, फांसियों–पाशों में बदल जाते हैं। जब इन पदार्थों में सुख है ही नहीं तो ये कहाँ से देंगें? ये स्वयं दुःखदायी है। सारा संसार इनके पीछे लगा है, किन्तु–भटकन, अशान्ति, अतप्ति, दुःख के सिवाय आज तक किसी को कुछ नहीं मिला, क्या पानी के मथने से माखन निकल सकता है? क्या रेत के मथने से किसी को तैल की प्राप्ति हुई है। क्या कोयले की खान में जाने वाले को कभी मिश्री का स्वाद मिला है? ये पदार्थ अन्दर से विष भरे हैं, किन्तु देखने में सुन्दर है।

मंजिले फानी को अपना घर बना मत बैठना।
ढूंढ़ लेना अपने घर का ठिकाना रोज–रोज।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

आंख मत हक की इबादत से चुराना रोज–रोज।।

संसार को अपना घर बना कर मत बैठ। यह पराया घर है। तेरे असली मूल ठिकाने को ढूंढ़।

धाम अपने चलो भाई, पराए धाम क्यों रहना?
देह का घर है–संसार ! किन्तु आत्मा का घर है – सचखंड।
सचखंड बसे निरंकारा। करि–करि देखे नदरि निहाल।। (आदि ग्रन्थ)

तेरा सच्चा प्रीतम वहाँ रहता है। वही तेरा (आत्मा का) पति है। वह सदा अमर है। तू प्रीतम के देश से चलकर इस संसार रुपी मायालोक में आ गई। शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि के साथ मिलकर अपने को देह मान बैठी। तू है आत्मा, राजकुमारी। राजकुमारी का सम्बन्ध तो प्रीतम रुपी राजा के साथ होता है। माया के संग लाग मायाजाल में फंस गई। पराए घर को अपना घर मान बैठी। अपने घर के ठिकाने की खोज कर।

पश्चिम के एक सुविख्यात दार्शनिक बर्नानडशा एक बार रेल में यात्रा कर रहे थे। टी.टी. ने उस डिब्बे में आकर टिकट देखनी शुरु कर दी। बर्नानडशा भी अपनी टिकट खोजने लगे। कभी कोट की बाहरी जेब में और कभी भीतरी जेब में तलाश करने लगे। टी.टी. ने उनको पहचान लिया। उसने कहा "मैं आप की टिकट देखने नहीं आया, घबराओं मत। बर्नानडशा ने कहा", मैं टिकट तुम्हारे लिए नहीं खोज रहा हूं। अपने लिए खोज रहा हूं। टिकट पर मैं देखना चाहता हूं कि किस स्टेशन पर उतरना है। मैं अपने स्टेशन को ही भूल गया हूं। मेरे जीवन की गाड़ी कहां जाकर रुकेगी? क्या हम सब की दशा बर्नानडशा जैसी नहीं है? मानो हम सब अपना मूल ठिकाना भूल गये हैं। जिधर भोग देखे, उधर चल दिए। चारों और भटकाव, अशान्ति दिखाई देती है। न अपने सामने जीवन का लक्ष्य है, न बुद्धि की दिशा। जैसे सरिता कल–कल करती हुई दिन–रात चलती रहती है, उसे शान्ति तब मिलती है, जब वह सागर में अपने अस्तित्व को मिटाकर उसके साथ एकाकार हो जाती है। उसी प्रकार इस भटकी हुई रुह को तब तक शान्ति नहीं मिलेगी। जब तक अपने मूल ठिकाने में पहुंच कर प्रीतम प्यारे से मिल नहीं लेती।

सरिता जल जल निधि महुं जाई।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

होई अचल जिमि जीव हरि पाई।। (रामचरित मानस)

जीवन का ध्येय है – आत्मा का प्रीतम से मिलन। शरीर के विसर्जन होने से पहले यह सच्चा कार्य कर लेना चाहिए।

हरि मन्दिर यह देह है ज्ञान रतन प्रकट होई।

हृदय गुफा ही हरि का मन्दिर है, जहाँ प्रीतम रहता है। एक दष्टांत से स्पष्ट करते हैं– एक बार एक विद्वान ब्राह्मण कांशी में कबीर साहिब से मिलने हेतु बैल पर किताबें लाद कर उनके घर आए। वे कहीं बाहर गए हुए थे। पंडित जी ने उनकी पुत्री कमाली से पूछा, क्या यह कबीर साहिब का घर है? कमाली ने उत्तर दिया कि कबीर जो देह नहीं है। वे चिन्मय, सच्चिदानन्द स्वरूप है। उनके घर में तो ब्रह्मा, विष्णु, शंकर भी नहीं पहुंच सकते –

कबीर का घर शिखर पर जहाँ सिलहनी गैल।
पांव न टिके पिपिलिका पंडित लादे बैल।।

कबीर का घर बहुत संकीर्ण, सूक्ष्म से सूक्ष्म है, जहाँ चीटी भी पर नहीं मार सकती। वहां तेरा बैल, तू और ढेर सारी पुस्तकें कहां पहुंचेगी? पंडिल जी का विद्यामद चूर–चूर हो गया और वे चुपचाप वापस लौट गए।

ऊँचे एक महल में दे रहा बांग खुदा।
सूते बांग न सुन सकन रहा खुदा जगा।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण जगत से परे, धुरधाम में प्रीतम आवाजें मार रहा है, बांग दे रहा है। ॐ का अखण्ड कीर्तन चल रहा है। गैबी शब्द धुनकारें मार रहा है। सुरत शब्द ब्रह्म से भटकी हुई है। माया की जेल में कैद है। इसकी दुरवस्था से द्रवित होकर प्रीतम सुरत को जगाते हुए कहते हैं –

सोई–सोई क्या करे उठ भगवान देव जाग।
जाके संग से बिछुड़ी है ताहि के संग लाग।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

मोह निद्रा से जाग। किसी सत्गुरु प्यारे की शरण में जा। बेगम धाम का रास्ता पूछ। नाम की ओट ले। साध रत हो जा। चल उस दीवाने देशकी तरफ, जहाँ से पिया जी तुम्हें बुला रहे हैं।

टेक – चलो चलो पिया जी के देश बुलाओ आयो रे।
ऊँचे महल में प्रीतम पुकारे।
शब्द ॐ की धुन झंकारे।।
आओ–आओ रमें क्यों परदेश। बुलाओ आयो रे।। १।।
बेगम देश है बड़ा दीवाना।
अमत झर रहा पी परवाना। पहुंचे–पहुंचे योगी दरवेश। बुलाओ आयो रे।। २।।
मायाकाल का वहां नहीं चारा।
अनहद बाजे बजे नगारा। जगमग–जगमग ज्योति प्रदेश। बुलाओ आयो रे।। ३।।
गुरु ने ज्ञान की छुट्टी दीनी।
भगवान देव पर कृपा कीनी। पायो पायो परम पद देश। बुलाओ आयो रे।। ४।।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

"काम अपना करो जाई (पराए काम क्यों फँसना)"

काम दो प्रकार के हैं – जागतिक और परमार्थिक। व्यक्ति की निजी एवं परिवार की आवश्यकताओं को पूर्ण करने, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दायित्वों का निर्वहन करने सम्बन्धी प्रातः से लेकर सांय तक कार्यों का प्रवाह चलता रहता है। मानव कामनाओं, भोगवासनाओं का क्रीत दास बना हुआ है। इन्द्रियों, मन, बुद्धि पर नियन्त्रण नहीं है। मानव स्वयं आत्मा होते हुए भी मन आदि का गुलाम बना हुआ है। उनकी धुन पर नत्य कर रहा है। कामनाओं की पूर्ति के लिए निषिद्ध पाप कर्म करता जा रहा है। उसके सामने केवल एक यह कार्य है कि भोग पदार्थों का संग्रह करो और रज–रज कर उपभोग करो। पदार्थों के इकट्ठा करने में पाप, अन्याय, अनीति का भी प्रश्रय करो, तो कोई डर नहीं। वे पाप पर पाप करते हुए पापों की खान बन जाते हैं। काश ! उन्हें यह पता होता कि इनका कुपरिणाम चौरासी लाख योनियों और २८ प्रकार के नरकों में जाकर भोगना पड़ेगा। यदि एक मानव को त्रिलोकी का राज्य, उसके सभी पदार्थ, संसार भर की स्त्रियां, धन–वैभव दे दिया जाए तो भी उसकी तप्ति नहीं होगी। ज्यों–ज्यों भोग भोगता चला जाता है, त्यों–त्यों अग्नि में धत डालने की तरह वासनाएं, तष्णाएं और भड़कती जाती है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये चार वस्तुएं तो प्राणी मात्र में समान रुप से पाई जाती है। इनके अतिरिक्त यदि मानव पदार्थों के संग्रह उनके उपभोग तथा निकृष्ट स्वार्थों की पूर्ति में ही जीवन व्यतीत कर दे तो वह जीवन की बाजी हार जाएगा। यह जग मीठा, अगला किन डिट्ढ़ा इस गलत धारणा को लेकर अपने जीवन का सर्वनाश कर दे तो उसकी जो दुर्गति होगी, वह तो कंपा देने वाली होगी। उसको तो इन्द्रियराम और आत्महत्यारा कहा जाएगा। यह सब संसारिक कार्यों की चर्चा है।

अब रह गई बात पारमार्थिक कार्यों की। प्रातः अमत बेला में उठना, पवित्र स्नान करना, जप, तप, यज्ञ, ध्यान–समाधि, योग साधना करना, महापुरुषों–संतों की सत्संग करना, गीता, रामायण, भागवत, वेद–शास्त्र, आर्ष ग्रन्थों, महापुरुषों का सत् साहित्य पढ़ना, लंगड़े, लूले, विकलांग, अंधे, गूंगे, बहरे, दीन–दुःखी, पीड़ितों, शोषितों, रोगियों, विधवाओं, कोढ़ियों, बेसहारों, राष्ट्र, समाज, विश्व एवं प्राणिमात्र की निष्काम भाव से सेवा करना – ये

सभी कार्य पारमार्थिक कार्यों की श्रेणी में आते हैं। यदि व्यक्ति को पूर्व जन्म के पुण्य प्रताप से, साधु–सन्तों के संग से ज्ञान दष्टि मिल जाए तथा सुन्दर जीवन जीने की कला मिल जाए, तो उसके पौबारह पच्चीस हो जाए। वह केवल सच्चा मानव ही नहीं, प्रत्युत जीता जागता देवता और अन्त में परमेश्वर का स्वरूप बन जाएगा। उसके जीवन की खुशियों का क्या ठिकाना? उसके पारमार्थिक सुख के सामने त्रिलोकी के राज्य का सुख भी फीका है। नर सेवा, प्राणिसेवा, नारायण सेवा है। "कृण्वन्तो विश्वं आर्यम्" कर भला हो भला – ये उस दिव्य पुरुष के आदर्श वाक्य है – जय घोष है। मानव पहले मानवता, मानव धर्म धारण कर अपना सुधार करता है। फिर क्रमशः परिवार, समाज, राष्ट्र और वैश्विक सुधार करता है। जन–जन में आध्यात्मिक क्रान्ति फूंकता है। मानव–मानव को धर्म की संजीव मूर्ति बनाता है। बुद्धि को त्रदंतभरा बनाता है। समाज में बौद्धिक वैचारिक क्रान्ति का शंख फूंकता है। यदि संसार के छह अरब से अधिक पुरुष, नारी देवता और देवी बन जाएं, तो इस पावन धरा पर स्वर्ग को राज्य संस्थापित हो जाएगा। धर्म निष्ठ सच्चा मानव केवल प्राणिमात्र में ही नहीं, बल्कि कण–कण में प्रभु की सत्ता को देखता है –

चहूँ और राम और नहीं दूजा।
चहूँ ओर आरती चहूँ ओर पूजा।।

जब भक्त को ज्ञान की आंख मिलती है, तो वह सर्वत्र एक ही भगवान की झांकी देखता है। जब भक्त को ज्ञान की आंख मिलती है, तब वह निजी अस्तित्व खो कर प्रभु के साथ एकाकार हो जाता है। जैसे बिन्दु सागर में विलीन हो कर सागर का स्वरूप धारण कर लेता है। अंश अंशी के साथ अभेद रूप हो जाता है। पूर्ण समर्पित भक्त की एक–एक क्रिया प्रभु की पूजा, प्रभु की भक्ति बन जाती है। निषिद्ध पाप कर्म तो उसके निकट ही नहीं फटक सकते। वह सदा प्रभु की प्रीति व प्रसन्नता के लिए निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्म करता रहता है। वह सर्वगुण सम्पन्न, पुण्यों की खान बन जाता है। वेद माता क्या कहती है उसके उत्कर्ष के बारे में :–

इन्द्रो जयति न प्राजयाता अधिराजो राजसु राजयातै

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

चर्कृत्य ईंद्रयो बन्धश्चोप सद्यो नमस्यो भवेह।। (अथर्ववेद छ–६८–१)

सदाचारी, पूर्ण समर्पित मानव, अपने शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि पर पूर्ण आत्मा का शासन रखता है। वह आदर्श कर्मा, स्तुत्य, वन्दनीय, नमस्करणीय, उपासनीय अजेय, आदरणीय बन जाता है। वह हर क्षेत्र में विजयी होता है। उसे कोई परास्त नहीं कर सकता है। जैसे राजाओं में महाराजा सुशोभित होता है, वैसे ही वह मानव समाज में पूजित होता है। उसका पवित्र जीवन दूसरों के लिए अनुकरणीय एवं आदर्श हो जाता है।

कोई रो कर मरा, कोई हंस कर मरा।
पर जिंदगी उसकी भली जो कुछ बन कर मरा।
जिंदगी जी तो ऐसी जी सदा दिलशाद रहे।
तुम दुनियां से चले जाओ, दुनियां को तुम्हारी याद रहे।

ओ प्यारे मानव ! वह कर्म करके जाओ, जिससे लोगों के दिलों में तेरी छवि, आदर्श करनी बनी रहे। तु हंसते–हंसते जाओ, परन्तु हजारों, लाखों लोगों के नयन डबडब अश्रुओं से भरे हुए हों।

किसी के एक आंसू पर हजारों दिल धड़कते हैं।
किसी का उम्र भर रोना किसी काम का नहीं।।

दुःख की बात तो यह है कि मानव अपने असली काम को भूल गया है।

राम सिमर राम सिमर यही तेरो काज है।
माया का संग त्याग प्रभु जी के शरण लाग
जगत सुख मान मिथ्या झूठो जग साज है। (आदि ग्रन्थ)
देह धरे का फल यह भाई। भजिए राम सो काम बिहाई।। (रामचरित मानस)
प्रभु कर कृपा करहुं एहि भांति। सब तज भजन करऊँ दिनराती (रामचरित मानस)
अनित्य नित्यम सुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्वमाम्। (गीता ६–३३)
तस्मात् सर्व कालेषु मामनुस्मर युद्ध च। (गीता ८–७)
इयं ते यज्ञिया तनूः। (यजुर्वेद ४–१३)

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

ध्रुवं ज्योति निर्हितम् दश्येकम्। (ऋग्वेद)

वेद, गीता, रामायण तथा अन्य आर्ष ग्रन्थ ढोल बजा बजा कर मानव को जगा रहे हैं। असली, नकली कार्य की पहचान बता रहे हैं। करना है तो नेक–असली काम कर। सच्चा सौदा कर। सच्चा काम वह है – जो मानव का लोक–परलोक दोनों सँवार दे। संसारी कार्य भी कर किन्तु वेद विहित कर। निषिद्ध–पाप कर्मों को तो सदा के लिए ठुकरा दे। परमार्थ प्रभुदर्शन यह सर्वश्रेष्ठ काम है। संतों, गुरुओं से जीवन जीने की कला सीख। सच्चा जीवन जीने का ढंग सीखा। उन से जीने की कला, टैक्नीक, अटकल, तरीका सीख।

भव सागर में यों रहो ज्यों जल कमल निराल।
मनवा तहां ले राखिएं जहां नहीं जम जाल।
जिसको रहना उस घर सो क्यों जोड़े मीत। जैसे पर घर पाहुना रहे उठाए चीत।
प्रविशि नगर कीजे ने सब काजा।
हृदय राख कौसलपुर राजा (रामचरित मानस)
कर से कर्म करउ विधि नाना।
हृदय राख जहं कृपा निधाना।।

हमारे ऋषि–मुनियों और वेदादि आध्यात्मिक ग्रन्थों का मानव समाज पर भारी उपकार है। हम सदा उनके ऋणी है। उन्होंने सुन्दर जीवन जीने की एक अनूठी कला दी है। यदि इस तकनीक को मानव अपना ले, तो उसका जगतीतल पर आना सार्थक, धन्य–धन्य हो जाए। प्रभु अर्पण बुद्धि निष्काम भाव से, यह मेरा कर्त्तव्य है। ऐसा समझकर परार्थ के लिए काम करता जाए, कर्म, कर्मफल को प्रभु के अर्पित कर दे।

कर्म का कर्ता न बने, न फल की इच्छ करे, तो वह मानव, जैसे कमल की जड़ जल में है, सारी शक्ति पौधे को जल से मिलती है, परन्तु कमल का फूल पत्ता जल से निर्लिप्त रहता है। जैसे तेल जल में रहते हुए भी जल से अलग रहता है। वैसे ही मानव अनासक्त भाव से सब कर्म करता हुआ माया–संसार में लिप्त नहीं होता। आत्मा की सत्ता से सभी शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि की क्रियाएं हो रही है, किन्तु आत्मा सदा निर्लेप

नारायण है। मानव का सच्चा स्वरूप आत्मा है। वह अकर्ता है, इसलिए कार्य का कर्ता बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे अतिथि पराये घर में जाकर ठहरता है। सुन्दर घर है। पूर्ण सेवा हो रही है। परन्तु अतिथि भीतर से जानता है कि यह मेरा घर नहीं है। उस पराए घर के लिए उसकी कोई आसक्ति नहीं है। वह अपनी झोपड़ी के लिए ही अपने मन को अलग से उठाए रखता है। यदि मानव इस तकनीक को ग्रहण कर ले, तो वह जीते जी मुक्त हो जाता है।

धरती पर शरीर रहे, परमेश्वर में प्राण।

तत्वज्ञ पुरुष शरीर में संसार में स्थित रहते हैं। सब सत्कर्म करते हैं, किन्तु आत्मा से सदा प्रीतम में स्थिर रहते हैं। उनका चौबीसों घंटे मन वहां रहता है, जहां यमजाल नहीं है। परमधाम में रहता है। उन ब्रह्मज्ञानियों, जीवन मुत्तत्रें, तत्वज्ञों की महिमा को शेष–शारदा, देव, ऋषि मुनि भी नहीं जान पाते। वेद भी नेति नेति कह मौन हो जाते हैं। अतः हे मानव ! अपने असली कार्य से च्युत मत हो। उसको भूल मत।

एक अत्तार नामक उच्चकोटि के सूफी फकीर हुए हैं। वह इत्र बेचने का कार्य करता था। एक दिन वह ग्राहकों के साथ अपने कार्य में व्यस्थ था। संयोग से एक फकीर आ गए। उसने आकर अत्तार से दान मांगा। किन्तु अत्तार ने उसकी बात की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। दरवेश बार–बार भीख मांगता रहा, किन्तु कोई असर नहीं। अंत में दरवेश ने चिल्लाते हुए कहा "अत्तार ! तू दुनियां के काम में इतना फंस गया कि तुझे यह होश ही नहीं है कि तेरा असली काम क्या है? तुझे चिन्ता नहीं है कि एक दिन तेरी मौत तुझे खा जाएगी। अत्तार ने फकीर पर चोट करते हुए कहा, "जैसे तू मरेगा, वैसे मैं भी मर जाऊँगा। फकीर ने कहा, "सच कहते हो।" फिर सोच लो।" अत्तार ने कहा, "मैंने जो कुछ कहा है, वह दिल से सोच कर कहा है।" फकीर उसकी दुकान के आगे सीधा लेट गया। अपने प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर शरीर का त्याग कर दिया। अत्तार ने देखा कि फकीर ने सचमुच प्राण त्याग दिए हैं। इस घटना चक्र ने अत्तार के जीवन को पलट कर रख दिया। अरे, यह दरवेश–योगी तो मुझे जगाने के लिए आया था। क्या मैं संसार में केवल इत्र बेचने के लिए ही आया हूं या प्यारे प्रीतम से मिलने के लिए आया हूं।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

दिल दिया था दिलदार से लगाने को
लेकिन अफसोस मैंने दिल दे दिया संसार को।

परमात्मा ने मुझे भेजा था। प्रीतम का काम करने के लिए अपने स्वरुप को जानने के लिए किन्तु काम कर रहा हूं असार संसार का। छिक्कार है मुझे अपने निकृष्ट जीवन पर। वह मोह निद्रा से जाग गया। उसने दुकान सदा के लिए बन्द कर दी। चल पड़ा मालिक की खोज में सच्चा काम–सौदा करने के लिए। सत्गुरु की शरण ली। नाम की कमाई की। उसकी गणना विश्व के चोटी के फकीरों में हुई।

भगवान गुरु नानक देव जी महाराज जब बीस वर्ष के हुए तब पिता श्री कालू मेहता ने पन्द्रह रुपए देकर सच्चा सौदा करने के लिए भेजा। साथ में बाला को भी भेज दिया। वे चूहड़कना में पहुंच गए। छोटे बाजार में स्वादिष्ट व्यंजन, एक से एक उत्तम पदार्थ, रेशमी वस्त्र, टैरिकोट, सूती नाना प्रकार रंग रंगीलें कपड़े एवं मोहक वस्तुएं देखते हुए आगे निकल गए। उनमें कोई आकर्षण नहीं। सामने मन्दिर के निकट एक सघन पेड़ के नीचे संत मंडली के दर्शन हुए। सीधे वहां जाकर संत चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। दो घण्टे तक कीर्तन, प्रवचन की वर्षा होती रही। बीस वर्ष का युवा नानक संत दर्शन कर तप्त हो गया। सात्विक वातावरण में उनकी चित्त की वत्तियां निरुद्ध हो गई। अन्तर्मुख होकर रुहानी नजारे देखें। अनहद बाजे सुने। ध्यान गहन अवस्था में चला गया। निर्विकल्प समाधि लग गई। रुह मालिक से एकाकार हो गई। थोड़ी देर बाद नानक जी सामान्य अवस्था में आ गए। संतों के चरणों की धूर माथे पर लगाई। मंडली के मुखिया संत ने कहा, "बच्चा तुम ऐसे आदर्श सत्कार्य करोगे कि विश्व में तुम्हारा यश सौरभ सर्वत्र फैल जाएगा। तुम स्वयं तरोगे और सहत्रों लाखों जीव तुम्हारे संग से भव सागर तर जाएंगे। मंडली के किसी भक्त ने कहा, बच्चे ! कल से भोजन नहीं मिला है। यदि प्रबन्ध कर सकते हो तो करिए। नानक ने कहा, "सत वचन ! अभी प्रबन्ध करता हूं। वे बाला को संग लेकर बाजार में गए। वहां उन्होंने आटा, चावल, सब्जी, चीनी, दूध, घत, दाल, मसाले आदि खाद्य सामग्री खरीदी। भण्डारा तैयार हो गया। साधुओं की पंक्ति बैठ गई। बड़े आदर, श्रद्धा भाव से भोजन परोसा। रज–रज कर खाया। साधु तप्त हो गए। शेष रुपए

दक्षिणा के रुप में दे दिए। संतों ने आशीर्वाद दिया कि नानक ! युग–युग जिओ, महान् संत बनो। अपने सत्कार्यों द्वारा समाज की सेवा करो। नानक सच्चे सौदे से सन्तुष्ट होकर घर लौटे। पिता श्री को प्रणाम किया, पिता ने पूछा, बेटा ! क्या सौदा करके आये हो? नानक ने सारे घटनाक्रम की जानकारी दे दी। साधु–सन्त सेवा में पैसा लगा दिया, यह सुनकर पिता की भकुटी तन गई। मुंह तमतमा उठा और जोर से नानक के गाल पर चांटा जड़ दिया। नानक शांत खड़े रहे। बीबी नानकी को इस सजा से भारी दुःख हुआ। अपने भाई को पुचकारा। किन्तु नानक ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "पिता जी ! संतों के दर्शन किए। उनके प्रवचन, कीर्तन सुने। भूखे साधुओं को भोजन कराने में पन्द्रह रुपये लगाए। अतः आप ही बताइए कि इससे बढ़िया सच्चा सौदा, श्रेष्ठ काम और क्या हो सकता है। मैंने नकली नहीं असली काम किया है। सांसारिक वस्तुएं खरीद लाता, तो वे मेरे साथ नहीं जाती। उनका एक दिन विनाश भी निश्चित है। किन्तु मैंने नाम, सत्संग, परहित की जो कमाई की है, वह मेरे संग जाएगी। इसका कभी विनाश नहीं हो सकता।

टेक – पायो जी मैंने नाम रत्न धन पायो।
वस्तु अमोलक दीनी मेरे सत्गुरु, कर कृपा अपनायो।। १।।
जन्म–जन्म की पूंजी पाई–जग न सभी खुआयो।। २।।
चोर न लूट खर्चे न खूटे–दिन दिन बढ़त सवयो।। ३।।
सत की नाव खेवटिया सत्गुरु–भवसागर तर आयो।। ४।।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर – हरस–हरस यश गायो।। ५।।

भक्त धन्ना जट के जीवन में भी एक ऐसा प्रसंग आता है। आषाढ़ का महीना था। मूसलाधार वर्षा हुई। गरमी से तप्त लोगों को राहत मिली। शीतल हवा चल रही थी। किसानों का मन मयूर नत्य कर रहा था। मोर पीहू–पीहू का मधुर संगीत छेड़े हुए थे। सब कृषक अपने–अपने खेतों में बाजरा बोने के लिए चल दिए। इधर धन्ना भक्त को पांच वर्ष की अवस्था में ही प्रभुदर्शन हो गया था। भगवान ने बाल रूप में प्रकट होकर बाजरे की रोटियों का भोग लगाया था। वह अब बड़े हो गए थे। धन्ना के पिता ने उसे बोरी भरकर बाजरा का बीज दे दिया। चल पड़ा बुवाई करने के लिए। वह जैसे ही ग्राम से

बाहर निकला, वैसे ही उसकी दष्टि एक पेड़ के नीचे बैठी हुई साधुओं की टोली पर पड़ी। वह भक्त ह्रदय तो था ही। उसने ऊँट को एक तरफ पेड़ से बांध दिया। संतों के श्री चरणों में माथा टेका। भक्तों ने भिक्षा मांगी। हम भूखे हैं, भोजन चाहिए। यह सुनकर धन्ना तो प्रेम से सराबोर हो गया। बाजरे की बोरी दुकान में ले जाकर रकम ली। आटा, चावल, दाल, दूध, गोघत, चीनी, सब्जी आदि–आदि समान खरीद लिया। किसी से बर्तन लिए। स्वादिष्ट भोजन बनाया। संतों को परोस दिया। भक्ति रस से सने हुए प्रसाद को पाकर तप्त हो गए। सबको मत्था टेकते हुए दक्षिणा भी दी। उसके बाद संतों का सत्संग, प्रवचन हुआ। धन्ना भक्त सत्संग सुनते–सुनते भाव समाधि में चला गया। सर्वत्र आनन्द की वर्षा होने लगी। धन्ना ने नेत्र खोले। सबको प्रणाम किया। संत मंडली ने एक स्वर से आशीर्वाद दिया – जब तक धरती–आकाश रहेगा, तब तक तेरा नाम रहेगा। तुम्हारे श्रेष्ठ कार्य, सेवा भाव से हम अति प्रसन्न हैं। तुम्हारी भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ेगी। संतों से विदाई ली।

भक्त धन्ना ने विचार किया कि बीज तो है नहीं। घर में जाए, तो माता–पिता का भय है। अन्त में खेत में भी चले गए। धरती जोती बिना बीज के ही बाजरा बो दिया। बाजरा के स्थान पर छोटे–छोटे कंकर इक्ट्ठे करके सर्वत्र बिखेर दिए। भगवान सर्व शक्तिमान है। वे असम्भव कार्य को भी सम्भव बनाने में सक्षम है। अपने भक्त की लाज रखना उनका विरद है। वे भक्तों का योग–क्षेम स्वयं करते हैं –

अनन्याश्चिन्तयं तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्या भियुक्तानाम योगक्षेमं वहाम्यहम्।। (गीता ६–२२)

जो भक्त अनन्य भाव से मेरा चिन्तन, मनन, पूजा करते हैं, जिन्होंने अपने अहम् को पूर्णरूप से प्रभुचरणों में समर्पित कर दिया है, जो प्रभुसत्ता के साथ एकाकार हो गये हैं। भगवान कहते हैं कि उनका योग क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूं। योग–क्षेम का सामान्य अर्थ है – जो भक्त के पास किसी चीज की आवश्यकता है, वह तो लाकर देता हूं और जो वस्तु है उसकी रक्षा करता हूं। परन्तु वास्तविक अर्थ है, योग का अर्थ – आत्मा और परमात्मा का मिलन और क्षेम का अर्थ है कल्याण।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

धन्ना भक्त इसी श्रेणी के अनन्य भक्त थे। वे सदा प्रभु से तादात्म्य सम्बन्ध किए हुए थे। उनकी अपनी पथक सत्ता तो थी ही नहीं।

धन्ना ने अपनी मति अनुसार श्रेष्ठ कार्य–सच्चा सौदा किया। संतों का सुसंग, नाम जपना, कीर्तन, प्रवचन सुनना, संत दर्शन, उनका पावन आशीर्वाद, भूखों को भोजन कराना–भला इनसे अधिक श्रेष्ठ कार्य और क्या हो सकता है? ब्रह्मज्ञानी को भोजन कराने से त्रिलोकी तप्त हो जाती है।

ब्रह्मज्ञानी का दर्शन बड़भागी पावे।
ब्रह्मज्ञानी को बल–बल जावे।
कबीर दर्शन साध के बड़ भागे दर्शाया।
जे होवे सूली सजा तो कांटे ही टर जाय।।
शब्द कर्म की रेख कटावे।
शब्द–शब्द से जाय मिलावे।।

धन्ना घर लोटा। पिता जी ने पूछा, "बुवाई का काम कर आए" धन्ना ने उत्तर दिया, "जी हाँ"। बहुत उत्तम काम करके आया हूँ। घर में भगवद् भक्ति में लीन है। खेत में जाने से संकोज करता है। इधर पिता का भय लगा हुआ है। सब कुछ प्रभु पर छोड़ रखा है। अड़ोस–पड़ोस के किसान आकर कहते हैं कि तुम्हारी फसल बहुत अच्छी है। खेत में ऊँचे–ऊँचे बाजरे के पौधे, मोटा दाना, लम्बे–लम्बे पके हुए सिट्टे देखकर लोग आश्यर्च चकित हैं। बार–बार धन्ना से पूछते हैं कि ऐसा श्रेष्ठ बीज कहां से लाए? धन्ना चुप है। भरपूर फसल हुई। भंडार भर गए। धन्ना की सर्वत्र जय–जयकार हुई। यह है अनन्य भक्ति और सुश्रेष्ठ कार्यों का सत्फल।

एक और दष्टान्त देखिए अनन्य भक्ति का। श्रीधर स्वामी गंगा तट पर एकान्त में गीता की टीका लिख रहे थे। अनन्याश्चिन्तयन्तों माम्" इस श्लोक का 'योगक्षेमं व्हाम्यहम्' का पद आया, तो टीका लिखते हुए रूक गए। मन में विचार आया कि यहां पर इसका अर्थ योगक्षेम का वहन करता हूं। इसके स्थान पर योगक्षेमं ददाम्यहम् – होना चाहिए – अर्थात् भक्त के लिए योग क्षेम को अपने सिर पर नहीं ढोता, बल्कि योग क्षेम

देता हूं। ऐसा होना चाहिए। ऐसा सोचकर श्रीधर स्वामी ने भगवान की अकाट्य वाणी के अर्थ में संशोधन कर दिया।

उधर भक्त के घर में राशन–पानी ने होने से चूल्हा नहीं चढ़ा। तीन दिन तक टीका लिखने के बाद श्रीधर घर आने के लिए प्रस्थित हुए। भक्त अनन्य है। उसका समग्र समर्पण है। भगवान ने बाल रूप धारण कर घत, चावल, दाल, नमक की गठरी खिचड़ी बनाने हेतु सिर पर धारण किए हुए भक्त के घर का दरवाजा खटखटाया। श्रीधर की पत्नी ने दरवाजा खोला। लो, मां गुरु जी ने खिचड़ी का राशन भेजा है। मोहक श्याम स्वरूप को देखकर आनन्दित हो गई। भगवान के अधरों पर रक्त देख कर मात ने कहा, "यह खून कैसा?" मां ! मेरे गुरु जी ने मेरे मुख पर चपत मारी है, उससे रक्त आ गया। ठहरो ! अभी मैं जल लाती हूं। इधर प्रभु अन्तर्धान हो गए। थोड़ी देर पश्चात् श्रीधर स्वामी के घर आने पर उनकी पत्नी ने फटकारा। एक तो मोहिनी छवि धारण किए हुए बालक ने तुम्हारी खिचड़ी के लिए राशन अपने सिर पर ढ़ोया और आपने उसके मुख पर जोरदार तमाचा जड़ दिया। आपने यह ठीक नहीं किया। श्रीधर चक्कर खा गए। अरि देवी ! तुम क्या कह रही हो? मैंने तो कोई बालक खिचड़ी का राशन देकर नहीं भेजा और न ही मैंने किसी शिष्य को कहा। ध्यान आया कि गीता भगवान के श्रीमुख से निकली हुई कल्याणी वाणी है। उनकी अकाट्य वाणी को मैंने दुःसाहस पूर्वक काट डाला। हाय ! हाय !! कहाँ तुच्छबुद्धि मैं और कहां अन्तर्यामी, ऐश्वर्यों के धनी भगवान। भारी पश्चाताप हुआ। अश्रुओं से नयन कटोरे भर गए। अपने संशोधन को काट दिया और प्रभु से क्षमा याचना की। उन्होंने बिल्कुल ठीक कहा है कि मैं अनन्य भक्ति करने वाले भक्तों का योग क्षेम अपने सिर पर ढोता हूं। सर्वश्री दामापंत, जनाबाई, नामदेव, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, राकां, बांका, मीरा, नरसी मेहता, रविदास, कबीर, नानक, दयानन्द, विवेकानन्द एवं रामतीर्थ आदि अगणित भक्त हुए हैं।

अतः अपना काम करो। प्रभु को जानों। माया के काम में न फंसों।

अवर काज तेरे किते न काम। मिल साध संगत भज केवल नाम।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

जिन्होंनें नाम की कमाई की। परहित के काम किए। क्षणभंगुर शरीर को प्राप्त कर परमात्मा को जान लिए, उनका संसार में आना सार्थक हो गया। वे धन्य–धन्य हो गए।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

निगुरा कोउ न मिले पापी मिलो हजार

निगुरा कोई न मिले पापी मिलो हजार।
एक निगुरे के शीष पर लाख पापों का भार।
बिन गुरु माला फेरता, गुरु बिन करता दान।
गुरु बिन दान हराम है, जाय पूछो वेद पुराण।।

संतों, कवियों एवं विवेकी पुरुषों ने निगुरों पर तीखे व्यंग्य कसे हैं। यहां तक कह डाला कि निगुरे राम–नाम की कितनी ही माला फेरें, कितना ही दान दें, कितना ही धर्म–पुण्य करें। सब व्यर्थ है। शास्त्रों की ऐसी ही मान्यता है। युग–युग क्या अनेकों कल्प व्यतीत हो जाऐंगे, किन्तु निगुरों का चौरासी का फेरा कभी नहीं मिटेगा। गुरु बिन नाम नहीं, गुरु बिन ज्ञान नहीं, ज्ञान बिना मुक्ति नहीं। यह कहावत कटु सत्य है। जैसे व्यक्ति कृष्ण पक्ष की घोर अन्धेरी आमावस्या की रात्रि में कभी चलता हुआ किसी खड्डे में गिर जाता है। कभी झाड़–झंखाड़ में फंस कर कांटों से बिंध जाता है, कभी किसी नाले में गिर जाात है और कभी किसी पेड़, पशु से टकरा जाता है। कहने का भाव यह है कि घोर अंधकार में भटकता हुआ व्यक्ति अपने लक्ष्य–गन्तव्य स्थल पर नहीं पहुंच सकता। ऐसी ही स्थिति निगुरों की होती है। उनके भले ही दोनों माथे के नयन ठीक कार्य कर रहे हों। किन्तु हृदय स्थित विवेक–वैराग्य के दोनों नेत्र तो कभी खुल ही नहीं सकते। चाहे वह कितना ही जोर लगा ले। बिना गुरु के उनके जीवन में अज्ञानांधकार, भटकन, अशान्ति, दुःख पर दुःख का मुख देखना ही पड़ेगा। पापात्मा गुरुओं, साधुओं की शरण में आकर केवल पुण्यात्मा ही नहीं अपितु साधना द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाएंगे। किन्तु निगुरे तो परमधाम, परमपद के नजदीक तक भी नहीं जा सकते।

श्री शुकदेव जी महर्षि वेदव्यास के सुपुत्र थे। बाल्यावास्था में ही इन्हें तीर्व वैराग्य हो गया। परम वीतरागी थे। प्रभु की प्राप्ति के लिए वन की राह ली। कन्दराओं में इन्होंने अस्सी हजार वर्ष तक घोर तपश्चर्या की। शरीर कृश हो गया। किन्तु शान्ति न मिली। एक दिन विष्णुपुरी में जाने का निश्चय किया। स्वर्गलोक, ब्रह्मपुरी, शिवपुरी, विष्णुपुरी रुहानी मंडल है। जो इस काया में भी स्थित है। विष्णुपुरी के द्वार पर भगवान के

दूतों–पार्षदों ने उसे रोक दिया। तुम निगुरे हो। जाओं, प्रवेश पाना है, तो किसी समय के उच्च गुरु की शरण लो। वह हताश–निराश होकर लौट आया। सीधा अपने पिता श्री व्यास देव जी के श्री चरणों में गया। साष्टांग प्रणाम किया। चरणों में ढहकर अरदास की कि पिता श्री ! मैं किसी गुरु की शरण में जाना चाहता हूं। कौन ऐसा पूर्ण तत्वज्ञ ब्रह्मनिष्ठ है जिसकी शरण में जाकर अपने अभीष्ट की प्राप्ति कर सकूं। पिता जी ने मिथिला के राजा जनक के चरण–शरण में जाने की प्ररेणा दी। शुकदेव जी ने हंसकर कहा, "वह कैसे ब्रह्मज्ञानी संत है? मैं ब्राह्मण हूं, वह क्षत्रिय है। मैं त्यागी हूं, वह गहस्थी है, मैं तपस्वी हूं, योगी हूं – वह भोगी है। शुकदेव जी में अहंकार बोल रहा था। महर्षि व्यास जी ने बहुत समझाया कि वर्तमान समय में राजा जनक जी की टक्कर का कोई संत नहीं है। वह देह रहते हुए भी विदेह है। मेरी आज्ञा मानो। जाओ, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। शुकदेव चौदह कला अवतारी पुरुष थे। वह बारह बार जनक जी से मिलने के लिए गया, परन्तु श्रद्धा के अभाव में वापस आ गया। गुरु में भगवद् बुद्धि हो, पूर्ण निष्ठा हो, बुद्धि से, तर्क–विर्तक से कोसों दूर हो। उनके गुणों का ही गान करें, न कि दोषों का। उनकी निन्दा से सदा दूर रहे। शुकदेव जी तेरहवी बार गए। मार्ग में देवर्षि नारद ब्राह्मण वेश धारण किए हुए एक कौतुक दिखाने में रत थे। नाले की एक स्थान से पाल टूट गई। उससे कटाव के कारण बाहर पानी बह रहा था। ब्राह्मण कटाव वाले स्थान में मिट्टी डालता, परन्तु दोबारा मिट्टी आती, उससे पहले ही मिट्टी बह जाती। शुकदेव जी बहुत देर तक यह तमाशा देखते रहे। अन्त में कहा ! ब्राह्मण : तेरा सारा प्रयास व्यर्थ चला गया। सारा दिन भी व्यर्थ चला गया। तुम डोला नहीं बांध सके। ऐसा करो कि छोटी लकड़ियों की गठरी पहले डालो, फिर छोटे–बड़े ढेले डालो, इसके पश्चात् मोटी लकड़िया। बंध बन जाएगा। पानी बहना रूक जाएगा। देवर्षि नारद ने अपने मूल वेश में आकर कहा, "शुकदेव ! मेरा तो सारा दिन व्यर्थ में चला गया परन्तु महाराजा जनक जैसे श्रेष्ठ तत्वनिष्ठ की निन्दा करने से तेरी बारह कलाएं समाप्त हो गई है। यदि अब भी गुरु में श्रद्धा धारण न की तो तुम्हारी शेष बची दो कलाएं भी लुप्त हो जाएंगी। इन शब्दों ने जीवन ही पलट डाला। शुकदेव महर्षि को प्रणाम कर सीधा मिथिला नगरी में राजमहल के द्वार पर पहुंच गया। जनक जी की आज्ञा से वह तीन दिन तक भूखा, प्यास खड़ा रहा।

फिर दरबारियों को कहा, "उसको स्नान कराओ, छप्पन भोग लगाओ। शुकदेव जी ने व्यंजनों की तरफ झांका ही नहीं। उसको भूख प्यास तो थी, पर वह थी हरि दर्शन की। उसे और कसौटी कर कसा। रात भर जनानखाने में रखा। वह तो वीतरागी थे। सारी रात ध्यान–समाधि में व्यतीत कर दी। प्रातः राजमहल में बुलाया। वहां उन्होंने एक कौतुक देखा कि राजा का एक पांव जलती हुई भट्ठी में था। दूसरे पांव की रानियां दबाते हुए सेवा कर रही है। शुकदेव यह नजारा देख कर स्तम्भित हो गए। मैं तो इनको भोगी समझ रहा था। वे तो सचमुच योगी है। एक और चमत्कार दिखाया। दरबारी ने आकर कहा, "महाराज ! नगर में आग लग गई है। कचहरी जल चुकी है।" जनक ने कहा, जो इच्छा प्रभु की ! इतनी देर में नौकर ने आकर फिर कहा "अग्नि महल की ड्योढी तक आ चुकी है।" जो इच्छा प्रभु की, यह कह कर बात को टाल दिया। शुकदेव जी को स्मरण आया कि ड्योढी पर तो तेरा कोपीन सूख रहा है। उसे लेने के लिए दौड़ पर राजा ने हाथ पकड़ लिया। अरे, मेरी अरबों रुपयों की सम्पत्ति स्वाहा हो गई है। मैं चुप बैठा हूं, तू दो रुपये का कोपीन लेने दौड़ पड़ा। शुकदेव गुरु के श्री चरणों में ढह पड़ा। महाराज मैंने आपकी महिमा को नहीं जाना। चरणरज मस्तक पर लगाई। चित्त वत्तियां शान्त हो गई। ले लो शरण में चला गया समाधि में। हो गया शून्य। पात्र, अधिकारी तो था ही। वर्षों की तपस्या थी अहंकार गलते ही राजा ने गुरुकृपा प्रसादी आत्मज्ञान उड़ेल दिया। अपने स्वरूप को जानकर शुकदेव धन्य–धन्य हो गया। समाधि में संसार गायब था। एक सच्चिदानन्द रूप परम तत्व आत्मा ही शेष था, वही ब्रह्म तू है। यही ज्ञान है, यही सर्वस्व है। गुरुदेव ! मैं निहाल हो गया। एक क्षण नहीं लगाया ज्ञान नेत्र देने में। मैं दक्षिणा क्या दूं? बेटा ! दक्षिणा तो तुम ने अहंकार की पहले ही दे दी थी। बस यही चाहिए था। गुरु का आशीर्वाद पाकर पिता जी के पास लौटा। पूछ लिया, "तेरा गुरु कैसा? सूर्य जैसा है क्या? उत्तर दिया कि सूर्य में तेज है। वह तो अतुल रुप में गुरुदेव में मौजूद है। लेकिन सूर्य जैसी अग्नि, तप्त नहीं है।

क्या चन्द्र जैसा है? पिता जी ने फिर पूछा। शुकदेव ने कहा कि चन्द्रमा जैसी शीतलता तो, प्रचुर मात्रा में है। किन्तु चांद में जो कलंक है – वह नहीं है। पिता जी ऐसा सुनकर अति प्रसन्न हुए। तुम अब गुरु कृपा से ब्रह्मस्थ हो गए हो। अब जाओ,

तुम्हारे लिए सब पुरियों, तीन लोकों, चौदह भवनों के लिए दरवाजे खुले हैं। बेरोकटोक होकर ब्रह्म में विचरो।

सिक्खों के तीसरे गुरु अमरदास बासठ वर्ष तक निगुरे रहे। कोरे–के–कोरे। रूहानियत की दष्टि से जीवन में कोई प्रगति नहीं हुई। शान्ति भी नहीं मिली। वह हर वर्ष गंगास्नान के लिए हरिद्वार जाता था। मां भगवती के साथ भी उसकी अपार श्रद्धा थी। प्रति वर्ष मां के जगराते करवाता था। भंडारा लंगर भी चलाता था। गरीबों को दान करता रहता था। अन्य सत्कर्म करता। किन्तु शान्ति जीवन से कोसों दूर रही। उसने २२ वर्ष लगातार हरिद्वार जाकर पवित्र गंगा स्नान किया। परन्तु गंगा तप्ति नहीं दे सकी। आखिरी बर जब वह गंगा स्नान के लिए हरिद्वार जा रहा था, तो संयोग से मार्ग में उन्हें एक ब्रह्मचारी जी मिले। दोनों इकट्‌ठे चल दिए। गंगा स्नान किया। पूजा की। मंदिर में आरतियां उतारी। निर्धनों को दान दिया। लंगर बना कर खिलाया। यात्रा सम्पन्न करके दोनों अपने घरों के लिए चल दिए। पहले अमरदास जी का घर आता था। ब्रह्मचारी का घर अभी दूर था। दोनों प्रेम आबद्ध हो गए। रात्रि को भोजन किया। हरिचर्चा करते हुए ब्रह्मचारी जी ने पूछ लिया कि आपको गुरु धारण किए कितने वर्ष व्यतीत हो गए? अमरदास जी ने कहा "मैं अभी निगुरा हूं।" कोई गुरु धारण नहीं किया। मेरे लिए सब कुछ गंगा मैया और माता भगवती हैं।

वे ही मेरे गुरु हैं। ब्रह्मचारी जी उसे निगुरा जानकर स्तब्ध रह गए। हाय ! हाय !! निगुरे के घर में भोजन कर मेरे धर्म–कर्म सभी नष्ट हो गए। निगुरे का दर्शन करने से पाप लगा है। उसने उसी समय अपना बिस्तर उठाया और अपने गन्तव्य स्थल की ओर चले गए।

ब्रह्मचारी जी के प्रेरेक शब्द हृदय में चुभ गए। बासठ वर्ष का बूढ़ा हो गया, किन्तु अभी तक निगुरा रहा। भारी पश्चाताप किया। मन में तड़प लग गई। गुरु मिले तो जीऊँ, नहीं तो जीवन का क्या लाभ? गुनगुनाने लगा –

टेक – मोहे सतगुरु मिलन को डाढो चाव – लगन तो गहरी लाग रही।
गुरु मिले तो जिन्दा रहूं बिना मिले मर जाऊँ

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

गुरु–गुरु मेरो मनड़ो तड़पे कबरे मिलेंगी गुरुराय।। १।।
लगन लगी तो ऐसी लगी ज्यों चातक को बूंद।
पीव पीव पपैया पुकारे स्वाति मेघ बरसाय।। २।।
लगन लगी तो ऐसी लागी जैसे जल बिन मीन।
पानी पानी मछली पुकारे बिन पानी मर जाय।। ३।।
सतगुरु की रहमत मिले तो पीया मिलन हो जाय।
भगवान देव अमर पद पाया आवागमन मिटाय।। ४।।
सारी रात तड़पता रहा। हे गंगा मैया ! हे भगवती माता। मेरा गुरु से मेल करा दो।
मेरा मन लोचे गुरु दर्शन ताहि, विलपे चातक की नाहिं
तषा न उतरे शान्ति न आवे बिन दर्शन संत तुम्हारे जिओ।
अर्धरात्रि को आकाश वाणी होती है। तेरे को शीघ्र गुरु मिलेंगे।
टेक – मेरे ह्रदय में आई आवाज सतगुरु आवेंगे।
प्यारे सतगुरु कुटिया में आवें।
पवित्र चरणों की धूलि फैलावें। सुख शान्ति बरसोंवेगे।। १।।
झूम–झूम कर संगतां आवें
मस्ती में आकर फूल बरसावें, नाचें खुशियां मनावेंगें।। २।।
प्यारे भक्तों को ध्यान सिखावें।
भीतर नूरी नजारे दिखावें। अनहद बाजें सुनावेंगे।। ३।।
आत्म ज्ञान दे भ्रश नसावें।
भगवान देव हरि दरस करावें। आवागमन मिटावेंगे।। ४।।

अमत वेला में अचानक उनके भाई के घर की तरफ से मधुर संगीत की ध्वनि आई। बीबी अमरो भाई के बेटे से ब्याही थी। उसने गुरुवाणी का पाठ आरम्भ किया। अमरदास जी ध्यान से सुनने लगे। वाणी ह्रदय में बैठती चली गई। अमरो के पास जाकर पूछा। बेटी ! यह किसकी वाणी है? मुझे बड़ी प्यारी लगी है। अमरो ने कहा, "यह गुरुनानक साहिब की वाणी है। उनकी गद्दी पर मेरे पिता श्री अंगददेव जी विराजमान है। बेटी ! मुझे उनके श्री चरणों में ले चलो। बीबी अमरदास जी को लेकर गुरुधाम खडूर साहब में

पहुंची। पिता जी के पास जाकर अमरों ने माथा टेका, बेटी ! जिसको साथ लाई हो, उसको तुरन्त मेरे पास ले आओ। विरह की घड़ियां समाप्त हुई। अमरदास जी ने कमरे में जाकर गुरुदेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। श्री चरण रज माथे पर लगाई। मिलन की मस्ती इतनी थी कि थोड़ी देर के लिए अपने शरीर की सुध–बुध भूल गया। गुरु जी ने दोनों बाहें पकड़कर गले से लगा लिया। बेटा ! मैं तो बहुत दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। गुरुदेव ! भूली भटकी सूरत को अपनी चरण शरण में ले लो। नाम दान बख्शो।

गुरुदेव दया कर दो, मुझे शरण में रहने दो।
तुम ज्ञान के सागर से मोरी गागर भरने दो।
जो शरण तेरी आया वह पार हुआ क्षण में।
तेरे दर आया हूं चरणों में रहने दो।। २।।
मन छाया है अन्धेरा सूझे नहीं राह कोई।
अपनी रहमत बरसा कर ज्ञान दीपक जलने दो।। २।।
चाहे राखों या मारो चाहो डुबाओ या तारो।
मेरी जीवन किश्ती को अपने हाथों तरने दो।। ३।।
चौरासी फेरे में दुःख पर दुःख उठा रहा।
भगवान देव करो कृपा तेरे धाम में रहने दो।। ४।।

प्यारे सत्गुरु ने नाम दान दिया। निगुरापन का कलंक मिट गया। खडूर साहिब से व्यास नदी ३ कोस पड़ती थी। अमरदास बारह वर्षों तक वहां से नित्य एक टोकना जल अमत वेला में गुरुदेव के स्नान के लिए लाता था। एक दिन रात के अंधेरे में एक खड्ढ़े में पांव गया और धड़ाम से गिर पड़ा। पैर में मोच आ गई। एक जुलाहे ने अपनी पत्नी से पूछा, "कौन अंधकार में गिरा है। उसकी पत्नी ने ताना मारा कि वही अमर निथावां होगा, जिसके न घर है न घाट है। न दिन देखता है न रात। यही बात गुरुदेव के कानों में पहुंच गई। चौहत्तर (७४) वर्ष की आयु के वद्ध अमरदास ने दोबारा व्यास नदी से जल लेकर गुरु चरणों में प्रस्तुत कर दिया। हजारों श्रद्धालुओं की संगत इकट्ठी हुई। गुरुदेव

ने अमरदास को स्वयं स्नान कराया। नवीन वस्त्र धारण करवाएं। सेवा से अभिभूत गुरु ने गुरुआई की गद्दी पर बिठा कर तिलक कर दिया। आज से अमरदास को निथाओं का थान, निओटियों की ओट, निमानियों का मान, निराश्रयों का आश्रय बनाता हूं। अपनी रुहानी दौलत देकर अमरदास को भरपूर कर दिया।

कोई भी सांसारिक व्यवसाय, धन्धा, कार्य, शिक्षा—विद्या, तकनीक सीखनी है, तो उस विद्या में दक्ष, अनुभवी मास्टर की शरण लेनी पड़ती है। मनुष्य उसका चेला बनकर सेवा करता है। श्रद्धा—भक्ति के साथ मन लगाकर शिक्षा ग्रहण करता है। अपने गुरु की कृपा से एक दिन वह उस काम में दक्षता प्राप्त कर लेता है। गुरु दक्षिणा देता है। संसार का कोई भी हुनर, कार्य, विद्या सीखने के लिए गुरु की आवश्यकता है। आध्यात्मिक विद्या तो बड़ी जटिल, गहन, गम्भीर है। यह गुरु कृपा बिना कैसे मिलेगी। यहां तो पग—पग पर गुरु का मार्गदर्शन आवश्यक है। नास्तिक लोग भी जिनसे कुछ सीखते हैं, उन्हें गुरु कह कर पुकारते हैं। यहां तक कि समाज में आदर्श रखने के लिए भगवान राम ने ब्रह्मर्षि वशिष्ठ को, कृष्ण ने दुर्वासा ऋषि को, भगवान बुद्ध ने अलार कलाम को, चैतन्य महा प्रभु ने शवभारती को, शंकराचार्य ने गोविन्दपादाचार्य को, कबीर ने रामानन्द जी को, रविदास ने रामानन्द को, रामकृष्ण परमहंस ने तोतापुरी को एवं स्वामी विवेकानन्द ने राम कृष्ण परमहंस को गुरु बनाया। एक भी ऐसा साधु—संत, ऋषि—मुनि एवं भक्त नहीं मिलेगा, जो देहधारी गुरु विहीन हो। कहते है कि समर्थ गुरु रामदास को स्वप्न या ध्यान में भगवान राम ने मंत्र दीक्षा दी थी। बाबा चरणदास को वीतरागी परमहंस योगी शुकदेव जी महाराज ने स्वप्न में आकर मंत्र देकर साधना का मार्ग प्रशस्त किया था। साधना की सिद्धि तक समय—समय पर उनका उचित मार्गदर्शन चलता रहा। ध्रुव, प्रहलाद को देवर्षि नारद जैसे श्रेष्ठ गुरु मिले। दत्तात्रेय, वामदेव, जड़भरत जैसे अवधूत कोटि के पूर्व जन्म के सिद्ध योगी थे, जिन्होंने गुरुओं से दीक्षा लेकर सिद्धि प्राप्त कर ली थी। कईयों को गर्भ में ज्ञान हो गया था।

श्री मद्भागवतानुसार दत्तात्रेय जी ने चौबीस गुरु बनाए थे। दीक्षा गुरु तो एक ही होता है। भगवान दत्तात्रेय गुणग्राही थे। जिन पदार्थों से उन्होंने सार गुणग्रहण किया।

उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए गुरु के समकक्ष आदर दिया। कई जगह उनको उपगुरु माना है। गुरु धारण करते हुए पहले अच्छी तरह से परख लें कि क्या वे श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ हैं? क्या वे शिष्यों की शंकाओं का निवारण करने में सक्षम हैं? जिन्होंने वेदों, दर्शनों, उपनिषदों, पुराणों एवं अन्य आर्ष ग्रन्थों का मर्म सार तत्व को ग्रहण कर लिया है। साचार साधना द्वारा कुण्डलिनि शक्ति को जगा कर त्रिकुटी, दशमद्वार, हृदय गुफा आदि रूहानी मण्डलों की यात्रा करके स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण जगत का कोना–कोना छाना है। आत्म साक्षात्कार कर पूर्ण रूप से ब्रह्मस्थ हो गए हैं। जिन्होंने परमधाम, सचखंड में डेरा डाल लिया है। जहां माया–काल नहीं पहुंच सकते, जो जीवन्मुख होकर संसार में विचर रहे हैं, ऐसे महापुरुषों, गुरुओं के चरण पकड़ लो, भव सागर से पार हो जाओगे।

एक बात और समझने की है। कई लोग बार–बार गुरु बदलते रहते हैं। मैंने अठारह वर्ष की अवस्था में पूजनीय संत भक्त किरताराम जी को अपना गुरु बनाया। मेरी उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। उन्होंने नाम दान दिया। साधना की प्रक्रिया बताई। त्रिकुटी में ध्यान–साधना चल रही थी। वे समय–समय पर आकर मुझे संभालते रहते थे। मेरा दुर्भाग्य था कि गुरु देव कुछ दिन के बाद ही ब्रह्मलीन हो गए। मुझे प्रभु दर्शन की बड़ी तड़प थी। करोड़ों गुरु मंत्र का जप कर लिया था। अब आगे का ध्यान कहां करूं, कैसे करूं, यह एक समस्या आ गई। अनायास मेरे पास एक संत आ गए। बच्चे ! कैसे भटक रहे हो? मैंने कहा प्रभु दर्शन चाहिए। यह मंत्र देता हूं। इसका जाप करें। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो जाएगी। मैंने पूछा, "ध्यान दशम द्वार में कैसे लगाऊं"? उन्होंने कहा, मैंने भीतर की साधना नहीं की, आप किसी योगी गुरु के पास जाओ। अन्त में मैं पूज्यपाद गुरुदेव योगिराज स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती जी महाराज की शरण में पर्वत पर बसा हुआ मुनि की रेती–ऋषिकेश में स्थित योग निकेतन आश्रम में गया। दीक्षा देते समय गुरुदेव ने कहा, "तू राजनीति से आया है। एम.एल.ए. रहा है हरियाणा से। फकीरी और राजनीति का मेल नहीं है। मैंने कहा, "गुरुवर ! मेरी राजनीति बीते समय की बात हो गई। जब तक हरि दर्शन नहीं कर लूंगा, तब तक हिमालय नहीं छोडूंगा। मेरे साथ गुरुजी ने आठ ब्रह्मचारियों का दीक्षा दी थी। हम सब साधना में जुट गए। आश्रम की सफाई, पौधों को पानी, गुरुदेव के देश, विदेशों से आने वाले हिन्दी–अंग्रेजी के पत्रों का उनके संकेतानुसार

उत्तर देता था। आश्रम सम्बन्धी सरकारी काम के लिए अफसरों के पास जाना था। सेवा साधना में तन–मन से रत हो गया। शेष आठों ब्रह्मचारियों ने दो–तीन महीनों के बाद टाटवाला बाबा, बाबा मस्तनाथ, फलाहारी बाबा, वशिष्ठ गुफा के बाबा आदि कई गुरु बनाए। वे मुरादाबादी लोटों तथा आंवारा पशुओं की तरह भटकते रहे। वैराग्य ढ़ीला हो गया। बाद में वे आश्रम छोड़कर चले गए। धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। उन्हें कुछ नहीं मिला। न खुदा ही मिला न विराले सनम, न इधर के रहे न उधर के रहे। मैं पागलों की तरह साधना करता रहा। जबरदस्त लगन थी। मैं यहां प्रसंगवश एक अलौकिक देवी का जिक्र करता हूं। उसका नाम माता रामप्यारी था। वह सिद्धयोगिनी थी। बाल ब्रह्मचारिणी थी। उन पर गुरु कृपा खूब बरसी। मेरे से उनका अत्यन्त स्नेह था। नित्य प्रति साधना के बारे में पूछती। किसी वस्तु की आवश्यकता होती तो बिना कहे पहुंचा देती। उनकी मुझ पर इतनी रहमत बरसी की मेरी साधना पक्षी की तरह उड़ती हुई तीव्र गति से चली। गुरुदेव की आज्ञानुसार मेरा विशेष ध्यान देती थी। केवल चार महीनों में ही मुझ जैसे नालायक को लायक बना दिया। तुच्छ को कहीं का कहीं पहुंचा दिया। मैं उन माता जी और गुरुओं का युग–युग ऋणी रहूंगा। मैंने सन्यास की दीक्षा ली। परम पूज्य उदासीन सम्प्रदाय के आचार्य, महान तपस्वी बाबा कल्याणदास जी महाराज, जिन का बड़ा दिव्य आश्रम नर्मदा नदी के तट पर बसा हुआ अमरकंटक नगर (मध्यप्रदेश) में है।

ऐसे प्रसंग भी आते हैं कि बाल्यकाल में नामदेव, धन्नाजाट जैसे अनेक भक्तों ने कृष्ण, विट्ठल, राम, हनुमान, शिव आदि को अपना इष्ट मान कर पूजा की। भक्ति की। उनका चित्त अपने–अपने इष्ट में एकाग्र हो गया। साधना की परिपक्वता से उनका चित्त इष्ट का स्वरूप धारण कर ध्यान में बार–बार दर्शन देने लगा। भक्तों की इच्छाओं को भी पूर्ण किया। उनका संकटों से उद्धार किया। बिगड़े हुए काम भी संवारे। असम्भव काम भी सम्भव हुए। उन्होंने जीवन में अनेकों चमत्कार किए। उन भक्तों की महान संतों में गणना होने लगी। समाज में भारी मान–सम्मान मिला। उनका यश सौरभ सर्वत्र फैला। जब चौबीसों घण्टे हमारा इष्ट साथ है, तो गुरुओं के झमेले में पड़ने की क्या आवश्यकता है। किन्तु यह धारणा गलत है। इससे तो अहंकार की ही पुष्टि होगी। कल्या तो तब होगा,

जब देहधारी गुरु की शरण में जाएगी। स्वामी राम कृष्ण परमहंस को महाकाली ने ही स्वप्न, ध्यान में आज्ञा दी कि संत तोतापुरी की शरण ले। तुम्हें तत्वज्ञान का उपदेश देंगे। इससे तेरा कल्याण होगा। विट्ठल भगवान ने भक्त तुकाराम को स्वप्न में कहा, "आज तुम्हें संत मिलेंगे, उनको तुम गुरु धारण कर लेना। भक्त नामदेव के जीवन की भी ऐसी ही घटना है –

संत ज्ञानेश्वर, मुक्ता बाई, सोपान देव, निवतिनाथ, नामदेव आदि भक्त कांशी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए गौरा कुम्हार के घर में ठहरे। गौरा एक गहस्थी भक्त थे। उनकी भक्ति उच्चकोटि की थी। सब भक्त उनको चाचा के नाम से पुकारते थे। प्रेम से सब ने प्रसाद पाया। रात्रि को सत्संग हुआ। मुक्ताबाई ने गौरी से कहा, "यह सामने क्या पड़ी है? भक्त ने कहा, "यह थापी है?" यह क्या काम आती है? इससे घड़े पर मारने से पता लग जाता है कि यह कच्चा है कि पका। मुक्ताबाई कहने लगी कि क्या इससे सन्तों की कच्चाई–पक्काई का भी पता लग जाता है। भक्त ने कहा, "अवश्य"। गौरा कुम्हार एक–एक सन्त पर थापी थाप कर उनको टटोलने लगे। संतों ने कहा यह कैसा कौतुक? एक कोने में नामदेव बैठे थे। उन्होंने कहा, "सब संत पक्के हैं। केवल एक संत कच्चा है। वह नामदेव है। नामदेव ! तुम अभी निगुरे हो। इसलिए कच्चे हो तुम्हारा अभिमान अभी नहीं गया। अहंकार को समर्पित करने के लिए गुरुचरण होते हैं। वहां मस्तक नत किया जाता है। नामदेव ने कहा, "मैं तुम्हारी बात से सहमत नहीं हूं। पंढरपुर में अपने इष्ट विट्ठल (पाण्डुरंग) से पूछूंगा। पंढरपुर में जाकर नामदेव ने अपने इष्ट के चरणों में निवेदन किया कि क्या मैं कच्चा हूं? आप चौबीसों घण्टे मेरे संग रहते हो। मेरा हर कार्य सिद्ध करते हो। मेरे संकटों का निवारण करते हो, तो मुझे देहधारी गुरु बनाने की क्या जरूरत है? भगवान विट्ठल ने कहा, "वत्स ! मेरी आज्ञा है कि तुम देहधारी गुरु विसोवा खेचर की शरण में जाओ। गुरु के बिना तुम कच्चे हो। जब गुरु कृपा से आत्म साक्षात्कार होगा तब पक्के, श्रेष्ठ संत बन जाओगे। नामदेव ने कहा, "प्रभु ! जो आज्ञा। कल गुरुदेव के दर्शन करूंगा।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

दूसरे दिन नामदेव प्रातः ओंढिया नागनाथ शिव मन्दिर में जाते हैं। संत विसोवा खेचर को नामदेव के आने का पूर्वाभास हो गया था। वह शिवालय में अपने पैर शिवलिंग पर पसार कर लेट गया। नामदेव को संत के इस अजीब नियम विरोधी कौतुक को देखकर घणा हो गई। हताशा होकर वापस लौटने लगे, तो विसोवा खेचर ने कहा, "नामिया ! मैं वद्ध हो गया हूं। शरीर जीर्ण–शीर्ण है। अपने आप पैरों को उठाने की क्षमता नहीं है। तुम एक काम करो। मेरे पैरों को उठाकर वहां रख दो, जहां शिवलिंग नहीं है। उसने दोनों पैरों को उठाकर खाली जगह पर रखा। आश्चर्य हो गया। वहां पर भी शिव पिण्डिका प्रकट हो गई। वह जहां–जहां पैर रखता, तहां–तहां शिवपिण्डकाएं निकल आती। नामदेव की आंखे पथरा गई कि यह क्यों हो रहा है? यह कोई जादू है कि चमत्कार। संत ने कहा, "बेटा ! परमात्मा कोई एक स्थान पर नहीं रहता।

हरिव्यापक सर्वत्र समाना
प्रेम से प्रकट होई मैं जाना। (रामचरित मानस)

वह तो जैसे तिलों के कण–कण में तैल हैं, मेहंदी के कण–कण में लाली है, चकमक पत्थर के कण–कण में अग्नि है, दूध के कण–कण में मक्खन है, वैसे ही भगवान अनन्त ब्रह्माण्डों, लोकों के बाहर–भीतर सर्वत्र परिपूर्ण है। वह त्रिगुणतीत है। काल का भी महाकाल है। माया–प्रकृति से परे है। अदश्य, इन्द्रिय अगोचर, जन्म–मरण से रहित है। तू शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि जड़ अहंकार नहीं है। तू इनका साक्षी, सत्ता–स्फूर्ति से जड़ वर्ग को चलाने वाला, सच्चिदानन्द रूप आत्मा है। यह शरीर के रोम–रोम में भी छुपा हुआ है, वहां ब्रह्माण्डों में भी व्याप्त है। पहचानों, इस अमर आत्मा को। इसके जागने से मानव अमर हो जाता है। जन्म–मरण से मुक्त हो जाता है। गुरु ने ज्यों ही नामदेव को आत्मज्ञान का अमत पिलाया, शक्तिपात किया, त्यों ही उसकी समाधि लग गई। ब्राह्मी स्थिति में पहुंच गया। जब व्युत्थान में आया, तब गुरुदेव ने पूछा, "क्या देखा, जाना, अनुभव किया तमुने? वहां आनन्द ही आनन्द है, अमत ही अमत है। इसके अतिरिक्त वहां कुछ नहीं। एक अनन्त चैतन्य आनन्द सागर लहरा रहा है। ब्रह्मानन्द की मस्ती में झूमता हुआ नामदेव कह उठा –

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

देखा अपने आपको मेरा दिल दीवाना हो गया।
छोड़ो मुझे यारों मैं खुद पर मस्ताना हो गया।
जिधर देखता हूं जहां देखता हूं
एक अपनी ही ताब और शान देखता हूं।

गुरुदेव के चरणों में ढह गया। साष्टांग प्रणाम किया। गुरु चरण रज माथे पर लगाई और गुनगुनाने लगा –

बिन गुरु देव और नहीं जाई।
नामदेव गुरु की शरणाई।

फिर तो रंगीला भक्त ब्रह्मनिष्ठ हो गया। एक दिन नामदेव ने भोजन बनाया। भीतर झोंपड़ी से घी लेने गया। पीछे से एक कुत्ते ने रोटियां मुख में दबाई और चल दिया। नामदेव हाथ में घी लेकर पीछे भागा। भगवन ! जरा ठहरिये मैं रोटियों को घी से चुपड़ रहा हूं। फिर भोग लगाओ। एक दिन झोंपड़ी में आग लग गई। अहा ! हा !! मैं आपको पहचानता हूं। आज आप अग्नि रूप में आए हो। मैं आपको क्या भेंट करूं। सामान इधर–उधर था। उसे ले लेकर अग्नि में डालने लगा। लो भगवान ! आपके अर्पण। अब तो इतनी आत्मवास्थिति हो गई कि –

जहां देखूं वहां तू ही तू है।
हर गण में जलवा तेरा हूबहू है।

गुरुदेव ने ज्ञान नेत्र खोल दिया। बहुत पश्चाताप किया कि तू जीवन में बहुत विलम्बन से गुरुमुख बना। उन सद्‌शिष्यों की स्तुति कर उठा, जिन्होंने ने गुरुचरणों की सेवा की।

उन भक्तों के खुल गए भाग, जिन गुरु सेवा करी।
शवरी ने गुरु की सेवा कीनी।
गुरु कृपा से हुई राम मिलनी, उनका हो गया राम अनुराग।। १।।
हनुमंत ने रामजी की सेवा कीनी।

सीता ने अमरता की आशीष दीनी। गुरु कृपा से हुआ बड़भाग।। २।।

मीरां ने गुरु की सेवा कीनी।

भक्ति के रंग में रंग गई दीवानी। छोड़ दी उसने लोकलाज।। ३।।

जो जो भक्त गुरु सेवा में रंग गए।

भगवान देव उन्हें प्रीतम मिल गए। उनके के सर गए सारे काज।। ४।।

अफसोस ! आज मानव भटक रहा है। अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए देवताओं के पीछे भाग रहा है। एक देवता से इच्छा पूर्ण नहीं हुई, तो दूसरे देवता के शरण में चले गए। इस तरह से देवताओं के चक्र में फंसे रहते हैं।

अरे, ओ प्रभु के प्यारो ! दौड़ सके तो दौड़ ले, जब लग तेरी दौड़।

दौड़ थका धोखा मिटा, वस्तु ढोड़ की ढोड़

गुरु देवताओं का देवता है, जिसकी शरण ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण अवतारी पुरुषों ने ली। गुरु वह है जो घट में घट दिखला दे। एक ही गुरु की शरण लो।

सब आए उस एक में डाल पात फल फूल।

रहीमन पीछे क्या रहा गह पकड़ा जब मूल।।

एक पेड़ के मूल को पकड़ लो। इसमें डाली, पात, फल, फूल सब आ जाएंगे। गुरु ब्रह्मा, विष्णु, महेश, परब्रह्म स्वरूप है। गुरु में तैंतीस कोटि देवताओं का वास है। एक गुरु सेवा से सब देवताओं और परमात्मा की सेवा हो जाएगी। इन्हीं की शरण लो। सब आशाएं, कामनाएं पूर्ण होंगी। जीवन में मधुर–संगीत गूंज उठेगा।

नाम–शब्द की महिमा

भगवान, गुरु, शब्द, नाम सभी पर्यायवाची शब्द है इनमें कोई भेद नहीं है। शब्द को वेदों, उपनिषदों में नाद ब्रह्म कहा है। ओंकार भगवान का नाम है। ॐ ही ब्रह्म है। ब्रह्म ही ॐ है। जब ब्रह्म और जड़ प्रकृति का सम्पर्क होता है, तो नाद, ध्वनि, शब्द पैदा होता है। यह आद्य स्पन्दन, कम्पन, चेतना, जीवनी शक्ति, चेतन लहर, नाम, शब्द ॐ आदि के रूप में जाना जाता है। यह चैतन्य, लहर, स्पन्दन जग की रचयिता, पालक पोषक है।

नाम के धारे सगले जन्त
नाम के धारे खंड ब्रह्मण्ड।
नाम के धारे आकाश पाताल
नाम के धारे सकल आकार
नाम के धारे पुरियां सब भवन
नाम के संग उधरे सुन श्रवण।। (आदि ग्रन्थ)

संत मत में सुरत रूह को आत्मा कहा है। शब्द को परमात्मा की संज्ञा दी गई है। सुरत का शब्द से मिलन ही परमात्मा की प्राप्त कहा है।

जपा मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में ताको काल न खाय
सुरत समानी शब्द में शब्द किया प्रकाश
पतिव्रता पति को मिली पलक न छोड़े पास।।

शब्द ही भगवान है, भगवान ही शब्द है।

In the begining was the word and the word was with God and the Word was God. All Things were made by him and without him was not anything made. In him was life.

(Bible)

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

The worlds and heavens will go, but the word (OM) will never pass away. It will remain forever. It is all Truth.

आदिकाल में एक शब्द था। शब्द भगवान के साथ था। शब्द ही भगवान था। समस्त पदार्थ प्रभु से उत्पन्न हुए हैं। कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो शब्द से पथक होकर बनी हो। जीवनी शक्ति थी और यह जीवन ही मानव मात्र का प्रकाश था। बाईबल में परमात्मा और शब्द की एकता स्पष्ट है।

भगवान निराकार है। उसकी कोई प्रतिमा नहीं है। न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद यशः (यर्जुर्वेद)। वे निर्गुण, नित्य, निर्भय, अनन्त, प्रकृति से परे, सूक्ष्म से सूक्ष्म, महान् एवं महान एवं सर्वव्यापक है। उनकी सत्ता, स्फूर्ति–चैतन्य शक्ति से अनन्त ब्रह्माण्ड क्रियाशील है। एक ही प्रभू अनन्त रूपों को धारण करके स्थित है। वह अकाम है, धीर है, सच्चिदानन्द स्वरूप है। स्वयम्भु है। उनको किसी ने पैदा नहीं किया। वे अपनी सत्ता से सर्वत्र प्रकट है। उसके अनेक भाषाओं में अनेकों नाम है। विष्णुसहस्रनाम पुस्तक में एक हजार नामों का उल्लेख है। किन्तु स्वयं अनाम है। यदि उसका कोई नाम है तो वह है ओंकार (ॐ)। एक ओंकार सतनाम कर्ता पुरुष निर्भय, निवैंर अकालमूर्त .... आकाश वाणी, ध्वनि, वाणी, अनहद बाजा, इलाही कलमा, बांग, अखण्ड कीर्तन, नाम, रामधुन, ॐ, अमत, आज्ञा, कानून आदि शब्द के ही विभिन्न नाम है। नाम दो प्रकार का होता है। वर्णात्मक और धुनात्मक। भगवान के हजारों वर्णात्मक, गुणवाचक नाम है। मंत्र ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, राम–राम, कृष्ण–कृष्ण, श्रीराम जय राम जय जय राम, हरे राम, हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे, ॐ, सोहम्, ज्योति निरंजन, ओंकार, रंरकार, सतनाम, सत्पुरुष, अकाल मूर्त, शब्द स्वरूपी राम, ॐ शान्ति, धन्य निरंकार, गॉड, वाहेगुरु आदि हजारों वर्णात्मक, गुणवाचक नाम है। सभी नाम–मंत्र एक जैसी शक्ति वाले हैं, और न कोई बड़ा है न कोई छोटा है। जो मंत्र या नाम गुरु ने दिए हैं, उनका श्रद्धा भक्ति के साथ स्मरण करें। चौबीस–चौबीस लाख, एक–एक करोड़ के पुरश्चरण करने से विकार, पाप, तप, वासनाएं दूर हो जाते हैं। अन्तःकरण पवित्र हो जाता है। कामनाएं पूर्ण हो जाती है। बड़े–बड़े संकट टल जाते हैं। ध्यान करते हुए जब जप चलता है, तो मन एकाग्र होने लगता है। अन्तर से शान्ति टपकती है। यही गुणवाचक नाम जापक को नूरी नाम (धुनात्मक) नाम से संगत करता है। यह नाम दो रूप में प्रकट होता है। एक शब्द, ध्वनि, अनाहतनाद, अनहद बाजे के रूप में और दूसरा ज्योति के रूप में, विभिन्न रूहानी नजारों के रूप में। इसको शब्द भी कहते हैं। यह धुन धुर बेगम देश

के नीचे रूहानी मंडलों में से गुजरती हुई त्रिकुटी महल तक आती है। इस मंडल में घंटों, शंख के रूप में यह नाद सुनाई देती है। दशम द्वार में मुरली, आगेकिंगरा, बीता आदि नादों में परिवर्तित होती हुई सत्यलोक की हद में ॐ की धुन फूटती है। यहां मैंने अखंड ॐ–ॐ, ॐ की मस्तानी धुन–कीर्तन सुना। अखंड कीर्तन होता रहता है। इतनी मस्ती, शान्ति, आनन्द है। इस धुन में कि रूह सुनकर मस्त हो जाती है। ॐ शब्द में इतना आकर्षण है, कशिश है कि सुरत को बरबस परमधाम, सच्चखंड में ले जाता है। रूह प्रीतम से मिलकर एकाकार हो जाती है। त्रिकुटी से परमपद की यात्रा तक क्या नूरी नजारे मार्ग में आते हैं, उन्हें मेरी योग चमत्कार पुस्तक पढ़नी चाहिए। नूरी नाम शब्द की शक्ति से अनोकें ऋद्धियाँ–सिद्धियाँ साधक की सेवा में उपस्थित हो जाती है। नाम में इतनी शक्ति है कि साधक जो चाहे वही पा सकता है। उसकी आध्यात्मिक शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि उसको भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है। लौकिक, पारलौकिक ऐश्वर्य उसकी झोली में आ पड़ते हैं। वह जीवन्मुक्त हो जाता है। मेरी नाम चमत्कार पुस्तक भी पढ़िए। इससे आपको नाम की शक्ति के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलेगी। आर्ष ग्रन्थ यहां तक कहते हैं कि बारह करोड़ जाप करने से प्रारब्ध की रेखाएं बदल जाती है। जीवन में आमूल चूल परिवर्तन हो जाता है। जैसे सूर्य की किरण और सूर्य एक है। सागर और बूंद एक है। सागर में बूंद अपने अस्तित्व को मिटाकर सागर बन जाती है। नाम जप से चौरासी की बेड़ियां कट जाती है। यमदूत–काल उसके निकट नहीं फटक सकते। नाम जप से शाश्वत आनन्द, नित्यशान्ति की प्राप्ति होती है। अन्त में नाम–नामी एक होकर मुक्त हो जाते हैं। नाम जापक स्वयं ही नहीं तरते, हजारों अन्य पतितों को भी भव सागर से पार कर देते हैं। नाम वही जपें, जो गुरुदेव देता है।

तीन कृपाओं का संगम

तीन प्रकार की कृपा होती है। भगवद् कृपा, गुरु कृपा और अपने ऊपर आपकी कृपा। तीनों प्रकार की कृपाओं का संगम होता है, तो प्रभु मिलन होता है। भगवान ने कृपा करके अनमोल मानव जीवन दे दिया। सत्गुरु ने दया करके नाम की बख्शीश दे दी। किन्तु क्या करेगा बेचारा सत्गुरु, क्या करेगी प्रभु की बरसती हुई अमत धारा, जब शिष्य ने ही अपनी बुद्धि का बरतन औंधा, उलटा रख रखा है। पर्वत के शिखर पर मेघ कृपा करके मूसलाधार वर्षा कर रहे है। चोटी पर पानी न ठहरकर पहाड़ की तली पर जाकर ठहरता है। चोटी का अर्थ है – अहंकार। जब शिष्य ने अहंकार का ताज पहन रखा है, तब सिर्फ गुरु कृपा और ईश्वर कृपा क्या करेगी? उसके लिए शिष्य की विनम्रता, पात्रता, योग्यता, पूर्ण रूप से तपा हुआ प्राँजल अन्तःकरण।

जब मैं योग निकेतन आश्रम ऋषिकेश में सत्गुरु के सन्निधन में योग साधना कर रहा था, तब की एक साधक की घटना याद आ गई। वह बहुत दिनों से साधना कर रहा था। वह शायद अमतसर के एक प्रसिद्ध वैद्य थे। उनकी आयु पचास वर्ष की आयु को पार कर चुकी थी। गुरुदेव व्यक्तिगत रूप से उसकी साधना में भारी दिलचस्पी लेते थे। उन्होंने अपनी रहमत बरसाकर शक्तिपात भी किया। किन्तु उसका अन्तःकरण का पट नहीं खुला। गुरुदेव ने उनसे गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान भी कराया। उसमें भी सफलता नहीं मिली। साधक हताश हो गया। न कोई रूहानी नजारा दिखाई देता था और न कोई अनहद बाजे सुनाई देते थे। उसे कोई अनुभूति नहीं होती थी। उसे गुरुकृपा मिली। भगवद् कृपा भी बरसी। परन्तु कोई सकारात्मक सुपरिणाम नहीं मिला हो सकता है कि उसकी भक्ति अनन्य न हो। आत्मसमर्पण अधूरा हो। जो श्रद्धा, निष्ठा, तड़प होनी चाहिए उसमें कमी हो। है जरूर कहीं न कहीं दोष। उसके मल, विक्षेप, आवरण की परतें जबरदस्त हैं।

सात द्वीप नव खंड में सत्गुरु फेंकी डोर।
ता पर हंसों न चढ़े तो क्या सत्गुरु का जोर।।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

एक व्यक्ति सागर में डुबक–डुबक कर रहा है। उसके चीखने की आवाज आई – है कोई प्रभु का प्यारा, जो मुझे सागर में डूबने से बचा ले। गुरु कृपा से एक संत ने उसके पास रस्सी फैंक दी। लो पकड़ो इसे, मैं तुम्हें खींचता हूं। किन्तु उसने कहा, "मैं रस्सी नहीं पकडूंगा। बचाना है तो अपनी शक्ति से बचा लो।" बताओ, इसमें गुरु का क्या दोष है? जब वह गुरु की आज्ञा ही नहीं मानता, तो गुरु बेचारा उसका क्या करेगा?

सबसे पहले यदि साधक को कृपा करनी है, तो शिष्य को अपने आप पर करनी होगी। इसके लिए पूर्ण अधिकारी बनना होगा। पात्र, योग्य बनना होगा। अन्तःकरण पर तीन मैली परतें पड़ी हुई हैं, जिनसे ये कलुष कालिमाओं से लिप्त है। ये परतें हैं – मल, विक्षेप, आवरण। पहली परत है – मल ! तन मैला, इन्द्रियाँ मैली, मन मैला, बुद्धि अज्ञान रूपी महामल से पूरित है। निज देह को ही आत्मा मान बैठा। इसलिए अहंकार भी महा मैला। अपने को ही सबसे बड़ा मानता है औरों को तुच्छ, क्षुद्र समझता है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीर दुष्कर्मों, पापों, कुसंस्कारों, दुर्विचारों, दुर्भावों, निकृष्ट चिन्तन एवं दुराचार से महा दूषित हो गए हैं। निष्काम, सत्कर्मों, सदाचार से मल की परत को हटाना होगा। वेद विहित कार्य होने चाहिए। जिन कर्मों से अपना कल्याण हो परहित सधे और प्रभु भी प्रसन्न हो, तो समझ लें कि ये श्रेष्ठ कार्य है। हमने आर्य–श्रेष्ठ बनना है, तो इन्द्रियों, मन, बुद्धि का आचरण, व्यवहार चेष्टाएं वेदों के अनुकूल हों। वे कर्म करें, जिनकी वेद आज्ञा दे। जिन कर्मों का निषेध करें, उनको भूल कर भी न करें। यदि जीवन लहलहाता हुआ, रसीला, मधुर, सुन्दर जीना चाहते हो, तो अन्तःकरण के खेत में पाप के बीज बबूल, कीकर, आक न बोयें। यदि चौसे आम, नागपुरी सन्तरों, इलाहबादी अमरूद, काबुल के अंगूर, कंधार के अनारों जैसे रसीले फलों का आनन्द लेना है, तो पुण्य धर्म के बीज बोओ। यदि शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि का आचरण उत्कृष्ट हो, तो फिर अपने जीवन में पग–पग पर सफलता, हर कार्य क्षेत्र में विजय, धन–वैभव, यश, मान–सम्मान, राज्य, उच्च पद सब कुछ मिलेगा। दूसरों की बात मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग–द्वेष, ईर्ष्या, कपट–छल, धोखाधड़ी आदि विकार भरे हुए हैं। मन चंचल, चपल है। रात दिन विषयों का चिन्तन हो रहा है। दूसरों का बुरा, अनिष्ट करने के विचार आ रहे हैं, तो सोच लेना चाहिए कि कोई खतरा कभी भी आ सकता है। सूक्ष्म शरीर में बुद्धि भी

है। यह भी इन्द्रियों, मन के जाल में फंसकर विषय वासनाओं के कीचड़ में धंस गई है। सूक्ष्म शरीर को सुसंस्कृत, शुद्ध करने के लिए सुन्दर उच्च विचार, सद्भावनाएं, सद्गुण होने चाहिए। मन के संकल्प–विकल्प कल्याणकारी, सुन्दर, शिव और सत्य से युक्त होने चाहिए। नाम स्मरण, ध्यान और श्रेष्ठ विचारों का अवलम्बन लेने से सूक्ष्म शरीर पवित्र, निर्मल हो जाएगा। इससे मन की चंचलता, विक्षेपता की परत दूर हो जाएगी। अज्ञान ही कारण शरीर है। यह तो सत्गुरु कृपा से जैसे ही मन में ज्ञान का दीपक जलेगा, वैसे ही अज्ञानांधकार तिरोहित हो जाएगा। अहंकार को शुद्ध करने के लिए अपनी मान्यता बदलनी होगी। यह कहना होगा–आज से प्रभु तू मेरा और मैं तेरा। पुरानी मान्यता मैं शरीर हूं, संसार मेरा है, इसको उखाड़ फैंकना होगा। अन्तिम धारणा यह लानी होगी। मंसूर ने कहा था –

मैं खुद हूं खुदा इश्क के मयखानों में देखा
जंगल में काबों में बीयाबानों में देखा।
मंसूर ने सूली पर चढ़कर पुकारा जब अनहलक को
इश्क का मजा यों मर जाने में देखा।

जैसे ही आत्मज्ञान होता है। द्वैत, भेदभाव समाप्त हो जाता है। सर्वत्र एक ही ब्रह्म का नूर–जलवा दिखाई देता है। आत्मा, ब्रह्म एक हो जाते हैं। चरमावस्था में पहुंच कर 'मैं ब्रह्म हूं' में से 'मैं' उड़ जाता है और शेष एक चैतन्य सत्ता, प्रीतम रह जाता है। यह ब्राह्मी स्थिति है। यहां 'हम न तुम – दफ्तर गुम' है –

कहन सुनन की बात नहीं देखा देखी बात।
दूल्हा दुलहिन मिल गए फीकी पड़ी बारात।

आवरण की परत आत्मज्ञान का उदय होते ही ढह जाती है।

अधिकारी बनो

वेदान्त में साधक को पात्र बनाने के लिए चार साधनों का उल्लेख किया है विवेक, वैराग्य, षट् सम्पदा और मुमक्षता।

विवेक : सत् – असत् के ज्ञान को विवेक कहते हैं। यह सब साधनों का मूल है। आत्मा अविनाशी अचल जग ताते प्रतिकूल।

ऐसो ज्ञान विवेक है सब साधन को मूल। (विचार सागर)

जैसे दूध, जल मिश्रित है। हँस जल को त्याग कर केवल दूध को गहण कर लेता है।

साधु ऐसा चाहिए जैसे सूप स्वभाव।
सार सार को गह रहे थोथा देय उड़ाय।

अतः साधक असार संसार झूठी वस्तु का त्याग कर दे और सत्य–सार वस्तु प्रभु को ग्रहण कर ले।

वैराग्य : लौकिक पदार्थों में अनासिक्त और प्रभु के श्री चरणों में प्रेम, प्रीति को वैराग्य कहते हैं।

दष्टानुश्रविक विषय वितष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् (योग दर्शन १–१५)
ब्रह्म लोक लौं भोग जो चहे सबन को त्याग।
वेद अर्थ ज्ञाता मुनि कहत ताहि वैराग्य। (विचार सागर)

दो प्रकार के विषय होते हैं। दष्ट और अनुश्रविका दष्ट वे हैं, जो इस संसार में दिखाई देते हैं। जैसे : स्त्री, पुत्र, धनैश्वर्य, सम्पत्ति, कोठी, बंगले, कार, हैलीकॉप्टर, मान–सम्मान, उत्कृष्ट पद, राज्य–सुख तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि। सुनने वाले विषय वे हैं, जो वेद शास्त्रों द्वारा सुने जाते हैं – जैसे स्वर्ग लोक से लेकर ब्रह्मलोक तक के आकर्षक, मोहक भोग। इन दोनों प्रकार के भोगों से अरूचि हो जाना वैराग्य कहा जाता है।

षट सम्पदा के गुण : (१) शम–दम–शुभ का अर्थ है मन पर आत्मा का अनुशासन तथा दम का भाव है इन्द्रियों का दमन। इन पर नियन्त्रण करना। (२) विरक्ति – उपरति (उपराम) : इसका अर्थ है विरति। विषय भोगों से मन उदास हो जाना। उनके प्रति अरूचि हो जाना उपराम कहलाता है। (३) तितिक्षा – इसका अर्थ है – सहनशीलता, सहिष्णुता, क्षमाभाव, सुख–दुःख, मान–अपमान, लाभ–हानि, अनुकूल, प्रतिकूल स्थितियों में सम रहना। साधक को हर स्थिति में विकार रहित, क्षोभ रहित, शांत, रहना चाहिए।

राजी है हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।
या यों भी वाह–वाह है और वों भी वाह–वाह है।

स्मरण रहे कि मनुष्य की कभी नहीं चलती। होता वही है जो मंजूरे खुदा होता है। बिगड़ी बन जाती है जब फजले खुदा होता है।

मन चाही होती नहीं प्रभु चाही तत्काल।
बलि चाहत स्वर्ग को भेज दिया तत्काल।

जो तिस भावे सोई होवे, इन मनुष्यों बस कछु नाहीं।

अपनी इच्छा को प्रभु में मिला दे। हर हाल में संतुष्ट रहे।

(४) श्रद्धा – इस का भाव है – निष्ठा, आस्था, विश्वास, घनिष्ठ अनुराग, दढ़ भक्ति। आत्मज्ञान की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य है। इस ध्येय के सम्पादन के लिए ऋत से भरी–श्रद्धा से आपूरित सात्विक बुद्धि का होना आवश्यक है।

श्रद्धावान लभते ज्ञानम्। (गीता)
श्रद्धया सत्यमाप्यते। (वेद)

श्रद्धानिष्ठ भक्त ही आत्मज्ञान को पाता है। श्रद्धा के अनुष्ठान से ही सत्य–प्रभु की उपलब्धि होती है। यदि विश्वास नहीं, श्रद्धा नहीं तो आत्मिक सफलता तो क्या भौतिक सफलता पाना भी संदिग्ध है।

(५) समाधानता – ध्यान, चित्त को एकाग्र कर प्रभु में लगाना ही समाधान है।

(६) मुमुक्षता – इसका अर्थ है – प्रभु को जानने की मन में तीव्र जिज्ञासा होना। यह बड़ा विलक्षण गुण है। जब हृदय में आता है तब दुःखों की निवत्ति और परमानन्द की प्राप्ति की उत्कृष्ट लगन उत्पन्न हो जाती है। युगों–युगों से दुःखों, क्लेशों और काल का मारा हुआ मनुष्य प्रभु की असीम कृपा एवं अपने पूर्व जन्मों के संचित कर्मों के फलस्वरूप भवरोग का मूलोच्छेदन करने के लिए तड़प उठता है। उसे अब संसार और इसके पदार्थ अच्छे नहीं लगते। हृदय में केवल एक ही इच्छा है कि अपने स्वरूप को जानूं।

मन से सकल वासना भागी।
केवल राम चरण लव लागी। (रामचरित मानस)
नामे प्रीति नारायण लागी
सहज स्वभाव भये वैरागी (आदि ग्रन्थ)
नारायण हरि लगन में ये पांचों न सुहात।
विषय भोग निद्रा हंसी जगत प्रीति बहु बात।।

भगवन की शर्त है कि रूह मेरे पास अकेली होकर आए। यदि उसके साथ कोई लौकिक कामना है, तो उसके लिए मेरा द्वार बन्द है। मेरे दर्शनार्थ प्रेमाग्नि प्रज्वलित करनी होगी।

"अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्व, इन्द्राय सुत्राम्णे पच्यसव।" (यजुर्वेद १०–६१)

हरि दर्शन के लिए मन, नेत्र, कर्ण, वाणी आदि इन्द्रियों और बुद्धि में किसी और को न बिठा कर ब्रह्म रस भर। प्रेम रस से इनको ओत–प्रोत कर। इन्हें सोमरस का पान कराओ। जैसे जल रहित मछली जल के लिए। चकोर चन्द्रदर्शन के लिए, चातक स्वाति नक्षत्र की बूंद के लिए तड़पते हैं, वैसे ही आत्मज्ञान का जिज्ञासु प्रभु दर्शन की बाट जोहता रहता है।

रामहि केवल प्रेम पियारा। जानलेवो जो जाननहारा।
मिलहि न रघुपति विनु अनुरागा किए जोग तप ज्ञान विरागा।
आंखड़िंयाँ झांई पड़ी पंथ निहार निहार।
जीभड़ियां छाला पड़ा राम पुकार पुकार।। (कबीर)

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

मीरां बाई की अकुलहट देखिए –

प्यारे दर्शन दीजो आज श्याम विन मो पै रहयो न जाय।

जलबिन कमल चन्द्र बिन रजनी, तैसे तुम बिन सजनी।

आकुल व्याकुल फिरूं, रैन दिन विरह कलेजो खाय।

भजन

प्यासे की प्यास बुझावों श्याम अपनी छवि दिखाओं।

श्याम बेगा बेगा आओ जरा देर न लाओ। मिल करके प्रेम बरसाओ।। १।।

संग में राधा जी को लाओ। मुरली मधुर बजाओ – आकर के रास रचाओ।। २।।

संग में गोपियों को लाओ। नाच नाचते ही आओ।

अपनी रहमत बरसाओ।। ३।।

श्याम और न तड़पावों। मिल कर तड़प बुझाओ।

भगवान देव गले लगाओ।। ४।।

तीव्र संवेगानामासन्न। (योग दर्शन १–२१)

समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्। (योग दर्शन २–४५)

प्रकृति का नियम है कि जब साधक के हृदय में तीव्र लगन, तड़प, छटपटाहट, व्याकुलता तीव्रतम रूप धारण कर लेती है, तो फिर वह वस्तु भी उसके पास पहुंचने के लिए व्याकुल हो उठती है। जब प्यासा प्यास से व्याकुल होकर पुकार उठता है कि पानी कहाँ है? तब भी व्यग्र होकर पुकारने लगता है कि पानी का अभिलाषी सज्जन कहाँ है? यही स्थिति प्रीतम दर्शन के लिए है। जब मुमुक्षु आत्म साक्षात्कार करने के लिए छटपटा उठता है तब मालिक भी अपना स्वरूप दिखाने के लिए उतना ही व्याकुल हो जाता है। योग दर्शन कहता है, समाधि अर्थात् आत्मा–परमात्मा मिलन, तीव्रतम लगन एवं पूर्ण आत्म समर्पण से तत्काल हो जाता है। भक्त देह, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि द्वारा किए जाने वाले कर्मों और उनके फलों को भगवान के चरणों में समर्पित कर देता है और जब मैं प्रभु चरणों में चढ़ाने से गल जाता है तो समूचा जड़ प्रपंच, जगत, दश्य भी स्वतः समर्पित हो जाता है। शेष रह जाती है। एक चैतन्य सत्ता, आत्मा या उसे ब्रह्म कहो।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

खुदी से जब तू जुदा हो गया है।
खुदा की कसम तू खुदा हो गया है।
जब मैं मिट गया तो, सूरते हस्ती नजर पड़ी।
वीरान खाक हो गया, बस्ती नजर पड़ी।
दिया हमने जो अपनी खुदी को मिटा।
वह जो परदा था बीच में अब न रहा।
रहा परदे में अब न वह परदा नशी।
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।

इसी संदर्भ में गीता का एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है :– भगवान अर्जुन को कहते हैं –

तस्मात्त्वमुतष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रुन्भुड़क्ष्वं राज्यं समद्धम।
मयैवैते निहिताः पूर्वमेव निमित्त मात्रं भव सव्यसाचिन। (गीता ११–३३)

हे सव्यसाची – अर्जुन ! तू उठ। यश प्राप्त कर। शत्रुओं को जीत कर धन धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब शूरवीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। इसलिए तू तो केवल निमित्त मात्र अर्थात् मेरे हाथ का हथियार बन जा। क्या गजब का तत्वज्ञान भरा है इस श्लोक में। भगवान साफ कहते हैं, "अर्जुन ! तेरे बिना भी जगत चलेगा। ये योद्धा तो पहले ही मरे पड़े हैं। वैसे तो भगवान किसी कंकड़ को हाथ में लेकर उसे निमित्त बना कर अपना काम ले सकते हैं। प्रभु राम ने एक सींक को निमित्त हथियार बनाकर जयन्त की एक आंख को बेंध दिया था। तू अपने को क्षुद्र मत समझ। मेरी आवश्यकता है, अभिमान से ऐसा आग्रह मत रख। तू मेरे हाथ का हथियार बन, इसके लिए तेरी आवश्यकता है। भगवान के हाथ का हथियार बनना, निमित्त बनना बच्चों का खेल नहीं है।

आसान नहीं आबाद करना घर मोहब्बत का।
यह उनका काम है जो खुद बरबाद होते हैं।
बच्चों का खेल नहीं मैदाने मोहब्बत।
यहाँ जो भी आया सिर पर कफन बांध कर आया।

साथ ही भगवान् ने निमित्त बनाने के लिए अर्जुन को कह दिया –

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

सर्व धर्मान्परित्यज्यं मामेकं शरण ब्रज।

अहम् त्वा सर्व प्रापेम्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (गीता १८–६६)

शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि द्वारा होने वाले वेद विहित कर्त्तव्य कर्मों और उनके फलों को मेरे समर्पित कर दे। केवल मात्र मेरी शरण अर्थात् प्रभु शरण में आ जा। अनन्य भक्ति द्वारा मेरे साथ जुड जा। मैं तुम्हें सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा। शोक मत कर।

अर्जुन भगवान कृष्ण के मित्र हैं – सखा है और रिश्तेदार भी है। किन्तु सबसे बड़ा रिश्ता है – गुरु – शिष्य का। जैसे कुम्हार घड़े को सुदढ़, मजबूत बनाने के लिए ऊपर से थापी द्वारा गढ़ता रहता है। किन्तु अन्दर प्रेम का हाथ होता है। चूंकि अर्जुन ने शिष्य बनने के बाद तन, मन, धन अर्थात् समग्र जीवन भगवान के समर्पित कर दिया है। इसलिए गुरु के कन्धों पर शिष्य के सर्वतोमुखी विकास का दायित्व आ गया है। यदि शिष्य पूर्णपात्र, अधिकारी, योग्य हो जाऐ, तो गुरु कृपा दौड़ी–दौड़ी आएगी। भगवान ने अर्जुन को अपने हाथों गढ़ा है, निर्माण किया है। फिर भी भगवान कहते हैं कि तू स्वयं बन। ऊपर से कोई सत्ता तुम्हारे निर्माण करने के लिए नहीं आएगी। वेदों का संदेश भी यही है। वेद का अर्थ है ज्ञान, विचार। इसके चार सूत्र हैं (१) जीवन जीना है। (२) सुन्दर जीवन जीना है। (३) जीवन में कुछ खोज करनी है। (४) जीवन में कुछ बनना है। गुरु कृपा वही हस्तगत कर सकेगा, जो बनेगा। जो उर आंगन को शुद्ध–निर्मल करेगा। जो बाहर–भीतर से पवित्र हो जाएगा। अर्जुन ने अपना तन, मन, बुद्धि, अह्म सब कुछ गुरु के चरणों में उड़ेल दिया है। अब वह भगवान के हाथ का हथियार बन गया है। कैसे बना है? देखिए जरा।

भगवान मुरलीधर है। सर्वप्रथम हमारा ध्यान मुरली की तरफ जाता है। मुरलीधर और मुरली दोनों ही अति सुन्दर है। अतः हमारा जीवन भी मुरली की तरह सुन्दर बने, ताकि प्रभु अपने मधुर अधरों का स्पर्श कराए। उसमें से मधुर संगीत निकले। यदि हम ने अपना जीवन ऐसा प्यारा बनाना है, तो हमें मुरली की तरह अन्दर से खोखला होना पड़ेगा। हमारे उर में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग–द्वेष, डाह आदि कचरे भरे पड़े

हैं। इनको बाहर निकाल कर मुरली की तरह खाली करना पड़ेगा। तब जाकर जीवन से मधुर संगीत फूटेगा।

फिर ध्यान प्रभु के चरणों की तरफ जाता है। वहां पादुकाओं के दर्शन होते हैं। प्रभु की चरण पादुका बनने के लिए अपनी चमड़ी को घिसाना होगा। प्रभु के लिए काम करना होगा, हमारी चमड़ी मुलायम, नरम, कोमल बननी चाहिए, ताकि प्रभु के चरणों में चुभे नहीं। प्रभु के शरीर का वस्त्र बनने के लिए जीवन को स्वच्छ, निर्मल, पवित्र बनाना चाहिए। उनके हाथ का हथियार बनने के लिए तो तपश्चर्या की पराकाष्ठा करनी होगी। इसी से जीवन में दिव्यता, तेजस्विता, प्रखरता आएगी।

अर्जुन ने अपने आप पर कृपा की। चारों साधन सम्पन्न होने से अन्तःकरण स्फाटिक मणि की तरह श्वेत पवित्र हो गया। अहंकार के अर्पण से दश्यजागत का भी समर्पण हो गया। हृदय खाली हो गया। अर्जुन को दिव्य चक्षु प्रदान कर कृष्ण रूप गुरु ने विराट रूप–विश्वरूप का दर्शन कराया। गुरु कृपा की धारा उमड़ पड़ी। अर्जुन थोड़ी देर के लिए निर्विकल्प समाधि में चला गया। हृदय के स्त्रोतों से सोम–अमीरस धारा प्रभु कृपा के रूप में उमड़ पड़ी। जब चित्त वतियां निरूद्ध हो जाती हैं, तो पीछे चैतन्य आनन्द–अमत सागर लहराता हुआ शेष रहा जाता है। अर्जुन अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करता हुआ कह उठा –

नष्टों मोह स्मतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युतः।
स्थितो स्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। (गीता १८–७३)

हे प्यारे सत्गुरु देव – अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैंनें स्मति प्राप्त कर ली है। अब मैं संशय रहित होकर स्थित हूं। अतः आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। चूंकि अर्जुन मन–बुद्धि, सब कुछ समर्पित कर चुके थे। इसलिये अब उसका मन–बुद्धि, संकल्प, इच्छा कुछ नहीं रहा। अब मरजी चलेगी, तो गुरु की, भगवान की चलेगी। जैसे पत्ते की अपनी कोई इच्छा नहीं होती। जिधर उसे वायु ले जायेगी, उधर ही चला जाएगा। वाटिका में पौधों को सींचने के लिए जल को किधर, कहां ले जाना है? यह मरजी माली की है। चाकू ने फल–सब्जियां काटनी है या किसी उदर में प्रवेश करना

है – यह इच्छा चाकू के स्वामी की है। ऐसे महापुरुष उच्चकोटि के होते हैं। अर्जुन, पात जलि, पाणिनि शंकराचार्य, गुरु नानक देव, कबीर, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ प्रभति आचार्य, महापुरुष इसी श्रेष्ठ श्रेणी के थे। उन्होंने भगवान के हाथ का हथियार बनकर लोक संग्रह का कार्य किया।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्येः
न मेधया न बहुना श्रतेन।
यमवैष वणुते तेन लभ्य
स्तस्यैष आत्मा विवणुते तनूंस्वाम। (कठोपनिषद १–२–२३)

मंत्र का भाव है – परमात्मा न तो उनको मिलते हैं, जो वेद–शास्त्र पढ़कर लच्छेदार भाषा में प्रवचन करते हैं, जो इस परम तत्व के विषय में सुनते रहते हैं, परन्तु जीवन में नहीं उतारते। प्रभु तो उनके पास दौड़े–दौड़े आते हैं, उन्हें आत्म दर्शन देते हैं, जो उनकी कृपा का पात्र होते हैं। वे उसी को प्राप्त होते हैं, जिसको वे स्वयं स्वीकार करते हैं। जो अपनी बुद्धि या साधन पर भरोसा न करके केवल उन्हीं की प्रतीक्षा करते रहते हैं। ऐसे कृपा निर्भर–साधक पर परमात्मा कृपा करते हैं और योग माया का परदा हटा कर उसके सामने अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं –

सोई जानहि जेहि देहुं जनाई।
जानत तुमहि तुमहि हो जाई।। (राम चरितमानस)

यह अकाट्य सत्य है कि गुरु कृपा बिना प्रभु दर्शन सर्वथा असम्भव है। जिन्होंने पाया है उन्होंने गुरु का होकर पाया है। ऐसे भी प्रमाण हैं कि अवधूत दत्तात्रेय, वीतरागी शुकदेव जी महाराज, भगवान राम, कृष्ण आदि पूर्व सिद्ध योगियों, महागुरुओं ने बाबा चरणदास, समर्थ गुरु रामदास, नरसी भक्त, प्रहलाद आदि अनेक भक्तों को स्वप्न या ध्यान में दीक्षा दी। साधना की प्ररेणा दी। गुरु कृपा बरसा कर अभीष्ट सिद्धि तक पहुंचाया। भगवान और ऐसे महागुरुओं, सिद्धों को तो गुरुओं का भी गुरु कहा है। गुरु का अर्थ है – भारी। जो क्षुद्र को भी गुरु – भारी बनादे

गु अंधियारा जानिए रू कहिए प्रकाश।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

मेटे अज्ञान तम ज्ञान से गुरु नाम है तास।।
कोटि चन्दा उगवे सूरज कोटि हजार।
मन का तम नाशे नहीं, गुरु बिन घोर अंधार।।

यदि पूर्ण रूप से पात्र, योग्य शिष्य मिल जाए और उधर सिद्ध–समर्थ गुरु उपलब्ध हो जाए, तो कहना ही क्या? यह मणि कांचन संयोग है। एक ऐसा अनूठा संयोग है – जैसे लोहे और पारस का पारस मणि गुरु है और लोहा शिष्य है। बस पारस से स्पर्श किया हुआ लोहा स्वर्ण बन जाता है। किन्तु गुरु की महिमा तो इससे भी अधिक कही गई है।

पारस और गुरु में बहुत ही अन्तर जान।
वह लोहा सोना करें, गुरु कर ले आप समान।

पारस लोहे को सोना तो बना सकता है, किन्तु अपने समान नहीं बना सकता। उधर गुरु की शक्ति देखिए कि वह अपने शिष्य को आत्मज्ञान रस का रसास्वादन करा कर शिष्य को अपने समान गुरु बना देता है। शिष्यत्व को गुरुत्व में बदल देता है। गुरु वह है, जो जीव को शिव बना दे। माया की दासता की जंजीरों को तोड़कर मुक्ति दे दे। गुरु का काम है शिष्य को गुरु बनाना। यहां एक वेद के मंत्र का उदाहरण प्रासंगिक होगा –

इन्दों यज्वने पणते च शिक्षत्युपेद् ददाति न स्वं मुषयति।
भूयो भूयोरयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्येनिदधातु देवयुम्। (ऋग्वेद ६–२८–२)

यह मंत्र साधकों के लिए जबरदस्त प्रेरणादायी है। साधक गुरूमुख है। साधना करते–करते जब सफलता हाथ नहीं लगती, तो हताश–निराश हो जाता है। पुरूषार्थ को असफल पाकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है, ऐसी स्थिति में इस मंत्र का संबल–सहारा लो। गुरुदेव और परमात्मा के सामने रो–रोकर प्रार्थना करो। इस मंत्र में यज्ञ और तर्पण की महिमा गाई है। जब प्रभु का प्यारा भक्त–देवयुम यज्ञ, नामजप, ध्यान, प्रार्थना द्वारा अनन्य भाव से, पूर्ण रूप से समर्पित होकर प्यारे प्रीतम को रिझाता है, प्रसन्न करता है, तप्त करता है। उसे न दिन को आराम और न रात को नींद। अहर्निश साधना कार्य में

जुटा रहता है। भूख–प्यास लुप्त हो जाती है। किसी से बात नहीं करता। पागलों की तरह प्रभु के लिए तिलमिलाता है। पुरूषार्थ की पराकाष्ठा करता है। तब अपने प्यारे प्रीतम का सिंहासन डोल उठता है। अंतःकरण से वासनायें, विकार निकल–निकल कर भाग रहे हैं। पवित्रता की किरणें शरीर के रोम–रोम से निकलने लगती है। अचल श्रद्धा, प्रचण्ड विश्वास प्रभु को प्रकट करने के लिए व्याकुल है। तब ध्यान में आकाशवाणियां फूटती है – "मांग–मांग, क्या चाहते हो? जो मांगोगें, वही मिलेगा।" परन्तु मस्ताना भक्त कहता है, "मुझे जगत नहीं जगदीश चाहिए।" एक ही टेक है – वह है पिया दर्शन की। साधक सांसारिक ऐश्वर्यों की तरफ झांकता भी है। संसार की वस्तुएं ससम्मान देता है। भक्त कहता है, "अपनी वस्तुओं को अपने पास रखो। स्वयं क्यों नहीं प्रकट होते। मैं इन खिलौनों के प्रलोभन में आने वाला नहीं हूं।

भक्त दर्शन–दर्शन, आत्मज्ञान–ब्रह्मज्ञान पुकार उठता है। तब गुरु–ज्ञान का गोला मारता है। विवेक का दीप जगता है। गुरु कृपा निहार कर प्रभु भी भक्त के समर्पित हो जाता है। अचानक देखते–देखते एक विस्फोट होता है। योगमाया का परदा उठता है। भगवान अपने भक्त के सामने अपना विराट स्वरूप प्रकट कर देते हैं। उस से कुछ भी नहीं छुपाते। मुख–सम्मुख हो जाते हैं। अपनी आनन्दमयी गोद में बिठा कर समाहित कर लेते हैं। भक्त की सत्ता को अपनी विराट सत्ता में एकसात कर लेते हैं। उसको आत्मिक ऐश्वर्य के अखंड खजाने पर बिठा देते हैं।

एकतरफा इश्क में मजा कुछ भी नहीं।
उल्फत में लुत्फ तब है कि हों दोनों बेकरार।।

गुरु–शिष्य का अनूठा सम्बन्ध

माता–पिता, भाई–बहन, पति–पत्नी, माता–शिशु, साला–बहनोई आदि अनेक सांसारिक सम्बन्ध हैं। ये सभी रिश्ते आत्मा को लौकिक बंधनों–पाशों में बांधते हैं। किन्तु गुरु–शिष्य के रिश्ते तो बड़े अनूठे हैं। ये मानव को सांसारिक बन्धनों से मुक्त करते हैं। चौरासी की बेड़ियों से मुक्त करके ये सम्बन्ध अपने आप समाप्त हो जाते हैं।

दस्तुतः मां–शिशु का सम्बन्ध अत्यधिक प्रेरक है। मां काम में लगी है, किन्तु मां का ध्यान बच्चे की ओर लगा रहता है। कहीं अग्नि को न छू ले, कहीं गड्ढे में न गिर जाएं, कहीं सीढ़ी से गिर कर चोट न लग जाए। कहीं गन्दगी में न फंस जाए। जहां जरा सी बच्चे की चीत्कार की आवाज सुनी, सब काम छोड़कर दौड़ पड़ती है। बच्चे को गोद में उठाती है। उसे अपने आंचल में छुपा लेती है। उससे दुलार–प्यार करती है। यह नहीं देखती कि बच्चा गंदगी में सना हुआ है। तेरे वस्त्र खराब हो जाएंगे। सब कुछ मंजूर है। किन्तु बच्चे को अग्नि से नहीं जलने देगी।

ऐसा ही अद्‌भुत सम्बन्ध है गुरु–शिष्य का। गुरुदेव अपने शिष्यों की पग–पग पर सार सम्भाल रखते हैं। हम जगत के खिलौनों के लोभ में गुरुदेव को भूल जाते हैं। परन्तु सत्‌गुरु तो अन्तर्यामी है। वे हमारा उद्धार करने, हमें सन्मार्ग पर चलाने के लिए शाश्वत सिद्ध लोकों को छोड़कर इस मर्त्यलोक में आते हैं। यह बता देते हैं कि तुम चाहे कितने ही सांसारिक खिलौनों से खेलो, परन्तु हमारी दष्टि तो सदा तुम पर ही टिकी हुई है। गुरुदेव विश्व–नियन्ता है। समग्र सष्टि का संचालन उनकी उपस्थिति मात्र से हो रहा है। उनकी दष्टि अपने भक्तों पर टिकी हुई है। सद्‌गुरुदेव देखते रहते हैं कि चेतना इन्द्रियों के झरोखें पर आकर विषयों की ओर झांक रही है। मन विषय सम्बन्धी संकल्पों–विकल्पों के प्रवाह में प्रवाहित हो रहा है। बुद्धि विचारों के बीहड़ वन में भटक रही है। अहंकार देह को ही आत्मा मान कर हुंकार रहा है।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

जब बच्चा अग्नि को पकड़ने के लिए दौड़ेगा, तो मां उसे धक्का देकर रोग देगी। वह रोएगा। गुस्से में आएगा कि मेरी मां ने मुझे क्यों पीटा? गुरुदेव भी जब शिष्य विषय–विकरों में रत होने लगता है, तो शिष्य को डांट मार कर रोकते हैं। फटकारते हैं तो शिष्य नाराज हो जाते हैं। गुरुदेव ! आपने यह क्या किया अभी तो युवावस्था है। खाने–पीने, मौज उड़ाने का समय है। आपने तो उल्टे दुःखों का तूफान भेज दिया। किन्तु गुरुदेव क्या करें? अपनों का तो ध्यान रखना ही पड़ता है। कसौटी पर कस कर उनको कुन्दन बनाने का दायित्व उनके कंधों पर है। यदि मां बच्चे के फोड़े में चीरा न लगवाए, तो उग्र रूप धारण कर मौत का कारण भी बन सकता है। कौन माता चाहेगी कि उसके बच्चे को पीड़ा हो। फोड़े का ऑप्रेशन कराना उसकी लाचारी है। इसी तरह गुरु की भी विवशता है – शिष्य की चिकित्सा करवाना।

गुरुदेव इस विश्व रूपी वाटिका के कुशल माली भी है। जिस प्रकार माली की निगाह अपने हर पौधे पर होती है, उसी प्रकार सत्गुरु की दष्टि भी अपने हर शिष्य पर टिकी रहती है। कुछ शिष्य तो ऐसे होते हैं कि गुरु को प्रणाम करते हैं। उनके प्रति श्रद्धा भी रखते हैं। परन्तु सच्चा शिष्य बनने का प्रयास नहीं करते। न ही पूर्ण शिष्यत्व पाने का साहस जुटा पाते। सोचते हैं कि सागर गहरा है। छलाँग लगाएंगे तो डूब जायेंगे। किनारे पर खड़ा होने मात्र से तैरना नहीं आएगा। साधना की भट्ठी में तो तपना ही होगा। तभी सच्चे शिष्य बनेंगे। बिना सत्गुरु के पूर्ण समर्पित हुए गुरु का सच्चा प्यार नहीं मिलेगा। हम देखते हैं कि पौधे तो सभी उगते हैं। परन्तु जिस पौधे को माली का पूरा प्यार मिलता है, उसका रूप तो अजीब होता है। उस पर फूल भी अनूठे लगते हैं। उसकी सुगन्ध भी बड़ी प्यारी होती है। किन्तु जिन पौधों को माली का प्यार नहीं मिलता, उनके चारों ओर घास उग जाता है। वह वाटिका नहीं बीहड़ जंगल बन जाता है। वाटिका के माली को अपने हर पौधे का ध्यान रहता है। खुरपी से चारों ओर उगी हुई खरपतवार को दूर करता है। अपने पौधों का पालन पोषण उसी तरह करता है, जिस तरह मां अपने बच्चे का पालन पोषण करती है। कभी–कभी माली के हाथ में कैंची भी होती है जिनसे वह पौधों की कटाई–छँटाई भी करता है। जो कमजोर पौधे होते हैं, जिनका अधिक विकास नहीं होता, उनकी कटाई को वह मना कर देते हैं। परन्तु जिन पौधों ने माली का प्यार देखा

है, वे चुप होकर अपनी कटाई–छँटाई करवाते हैं। क्योंकि वह सच्चाई जानते हैं कि इस कटाई–छँटाई में हमारा सच्चा हित छुपा हुआ है। कुछ ही दिनों में वे पौधे आकाश को चूमने लगते हैं। परन्तु जिन पौधों पर कैंची नहीं चली, वे बौने रह जाते हैं। इसी तरह सत्गुरु माली भी अपने शिष्यों पर साधना रूपी कैंची चलाते हैं। कुछ शिष्य कटाई–छँटाई के भय से भाग जाते हैं। किन्तु कुछ साहसी समर्पित शिष्य छाती तान कर खड़े रहते हैं। उनकी कटाई–छँटाई होती है। पहले तो ऐसे लगता है कि सब कुछ नष्ट हो जाएगा। किन्तु कुछ दिनों के बाद ताजा कोंपलें फूटती हैं। सद्गुरु अपने सच्चे प्रेम से सींच कर उन्हें एक सघन वक्ष बना देते हैं। वे हजारों पशु–पक्षियों, मानवों की शरण–स्थली बन जाते हैं। अपने समीप आने वालों को सघन छाया, शान्ति–सुख प्रदान करते हैं।

ऐसा ही सद्गुरु और शिष्य का प्रेम होता है। गुरुदेव तो अपनी लीला करके, ब्रह्मलीन हो जाते हैं। परन्तु सद्शिष्य सत्गुरु का पुष्प बनकर खिलते हैं। उनकी सुगन्धि को दिग–दिगन्त देश–देशान्तर में फैलाते हैं। वास्तविकता तो यह है कि सद्गुरु भक्त को शिष्य नहीं अपितु गुरु बनाते हैं। साधना में परिपक्वता पाकर शिष्यत्व विदा हो जाता है और गुरुता अवतरित हो जाती है। जो शिष्य साधना की भट्ठी में जलकर कुन्दन बन जाते हैं, वे अपने गुरु का रूप बन जाते हैं। वे सिद्ध हो जाते हैं। जब शिष्य गुरुदेव के इस अनूठे प्रेम का स्वाद चख लेता है, तब वह दुनियां के रंगों से स्वतः कटता चला जाता है। वह संसार में रहता हुआ भी जल में कमल पत्र की तरह, मुर्गाबी की तरह सब सांसारिक कार्य करता हुआ भी निर्लेप नारायण रहता है। असंग रहता है। वह जीवन्मुक्त हो जाता है। अपने समीप आने वाले हजारों लोगों को भवसागर से पार कर देता है। ऐसे सद्शिष्य के बारे में महापुरुष फरमाते हैं।

तीर्थ नहाये एक फल संत मिले फल चार।
सत्गुरु मिले अनन्त फल कहत कबीर विचार।।

लोगों में एक आम धारणा है कि तीर्थों में स्नान करने से पाप–ताप नष्ट हो जाते हैं। तन की शुद्धि होती है। यदि सद्शिष्य एवं संत मिल जाएं, तो चार फल सुलभ होते हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। सद्शिष्य वह होता है, जो सदाचारी, धर्मवलम्बी बनकर

साधनारत है। गुरुदेव को पूर्णतः आत्म समर्पित कर दिया है। तप करते–करते गुरु कृपा–गुरु प्रसादी–गुरु भक्ति को पा लिया है। त्रिगुणातीत माया से परे अथाह सत्चित आनन्द सरोवर में जिसने डुबकी लगा ली है। जो गुरु के लिए मर मिटने को तैयार है। जिसने आत्मा की झलक को पा लिया है – वह सच्चा शिष्य है। सच पूछो तो वह गुरु की जीती–जागती तस्वीर ही बन जाता है। ऐसा शिष्य ही परिपक्वता को पाकर सद्गुरु के पद पर आसीन होता है। उसे संत कहो या सद्शिष्य कहो, यह साधक की मरजी है। ऐसे संत मिलें, तो अन्तःकरण के पट खुल जाते हैं। पट क्या दीवार की दीवार ही हट जाती है। यदि सत्गुरु मिल जाए, तो अनन्त फल सुलभ हो जाते हैं। सद्गुरु ने जिस अमत–सोमरस का पान किया है। अपने सत्शिष्य को भी उस अनिर्वचनीय अमीरस का रसास्वादन कराया है। उस सच्चे सुख के आगे त्रिलोकी के राज्य का, यहां तक कि ब्रह्मलोक के सुख भी लज्जित होकर भाग जाता है। फीके पड़ गऐ हैं। बड़े–बड़े दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजा–महाराज, सम्राट, यहां तक त्रिलोकी का राजा इन्द्र इस अलौकिक सुख को क्या जानेंगे? वे भी इन ब्रह्मज्ञानियों के सामने रंक है। ब्रह्मरस लाभ के आगे पथ्वी, इन्द्रलोक के लाभ सब तुच्छ हैं।

पीत्वा ब्रह्म रस योगिनो भूत्वा उन्मतः।
इन्द्रो पि रंकवत् भायेत अन्यस्य का वार्ता।।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

गुरु चरण रज कृपा

एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी ने सद्‌गुरु प्यारे के चरण पकड़ कर उनसे प्रार्थना की। याचना की। गुरु ने कहा, "क्या चाहिए? गोस्वामी जी ने कहा", मुझे गुरु चरण रज की कृपा ज्ञान नेत्र चाहिए।

वन्दऊँ गुरु पद पदम परागा। सुरूचि सुवास सरस अनुरागा (रामचरित मानस)

गुरुदेव ने पूछा, "रज का क्या करोगे? गोस्वामी जी ने उत्तर दिया – धूरि से दो कार्य करूंगा। पहला–अमतमयी चूरण बनाऊँगा। दूसरा अंजन बनाऊँगा।

अमिय धूरिमय चूरण चारू। समन सकल भवरूज परिवारू।
गुरुपद रज मदु मंजुल अंजना। नयन अभिय दगदोष विभंजन।। (रामचरित मानस)

भौतिक शरीर में जब मिथ्या आहार, विहार से पेट में अजीर्ण–अपच हो जाता है, तब रोग को दूर करने के लिए चूर्ण लेना पड़ता है। इसी तरह आध्यात्मिक शरीर में भोगवासनाओं और अनेकानेक विकारों के कारण जब मन अस्वस्थ हो जाता है, तब उसको ठीक करने के लिए गुरु कृपा रज से बना चूर्ण चाहिए। दूसरे कामनाओं की गन्दगी, कचरे से मेरे नेत्र मलिन हो गए हैं। ये सामान्य अंजन से ठीक नहीं होने वाले हैं। इनके लिए गुरु कृपा का अंजन काम करेगा। यह अंजन गुरु चरणरज से बनेगा। गुरुेव कहने लगे, "गोस्वामी जी ! आपकी आंखें तो साफ सुथरी दिखाई दे रही हैं। चश्मा भी नहीं लगा हुआ"। गोस्वामी जी बोले – महाराज श्री ! मेरे नेत्रों में भयानक रोग हो गया है। वह यह कि मैं इन नेत्रों से जो देखना चाहता हूं, वह तो दिखाई नहीं देता और जो देखना नहीं चाहता, वह चौबीसों घण्टे मेरे नेत्रों में डेरा जमाये बैठा है। मैं इन नेत्रों से भगवान को देखना चाहता हूं। वह दिखाई नहीं देता। जगत को देखना नहीं चाहता, वह हर दम मेरे सामने रहता है। नेत्र की यह क्षमता बिना गुरु कृपा के नहीं आ सकती। दो प्रकार के नेत्र प्रभु ने मानव मात्र को दिए हैं। ब्रह्य नेत्र तो माथे में हैं। ये तो सबको दिए हैं। किन्तु भजन के लिए दो नेत्र और दिए हैं। ये है – विवेक और वैराग्य के नेत्र। ये हृदय में छुपे हुए हैं। प्रभु दर्शन इनसे होगा। इन दोनों नेत्रों को खोलने के लिए गुरु कृपा का

अंजन चाहिए। ज्ञान के नेत्र को शिव का तीसरा नेत्र भी कहते हैं। ये गुरु कृपा से ही सुलभ होते हैं। हमारे देश के सब स्त्री पुरुषों को इनका सामान्य ज्ञान है। जब कभी छोटे बच्चे किसी वस्तु को तोड़ देते हैं, फोड़ देते हैं तो माताएं कह उठती हैं कि बच्चे ! तेरे हिय–माथे की दोनों फूट गई क्या? जब ये दोनों बिगड़ जाती है, तो मानव अपराध कर बैठता है। सबसे पहले पाप नेत्रों में आता है। फिर दशवें द्वार में स्थित सूक्ष्म नेत्र में पहुंचता है। नेत्रों से मन में जाता है। मन से बुद्धि में जाता है। यदि बुद्धि में विवेक नेत्र नहीं है, तो बुद्धि भी पाप–बुराई करने का समर्थन दे देती है। बुद्धि ने जब निर्णय दे दिया, तो उस मानव को कोई पाप करने से बचा नहीं सकता। सूरदास जी के बाह्य नेत्र नहीं थे परन्तु अन्दर के ज्ञान नेत्र से सर्वत्र श्याम सुन्दर की झांकी देखते थे। प्रीतम सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। उसका इन माथे के भौतिक नेत्रों के द्वारा दर्शन नहीं हो सकता। इसके लिए ज्ञान के नेत्र चाहिए। वह मिलेगा गुरु चरणों की धूरि से। गुरु कृपा रज में कितनी शक्ति है – देखिए एक दष्टांत।

भारत के दक्षिण में स्थित नगर में गुरु रामानुजाचार्य श्री रंगनाथ जी के मन्दिर से शिष्टमण्डली के साथ बाहर निकले। सामने देखने के लिए एक कौतुक मिला। श्री रंगदास जी उस नगर के धनाढ्य सेठ थे। वह वहाँ एक वेश्या से सौन्दर्य पर इतने आसक्त हो गए कि मति भ्रष्ट होने से लोकलाज भी खो बैठे। उसके दर्शन के बिना उसे चैन नहीं मिलता। विषय वासनाओं में इतना डूब गए कि उसका चरित्र कलंकित हो गया। रंगदास वेश्या के सिर पर छाता ताने उसको सम्मुख देखते हुए पीछे की ओर चलते हुए मन्दिर के गेट के आगे से गुजर रहे थे। शिष्यों ने कहा, "गुरुदेव ! यह वहीं रंगदास है जो वेश्या पर लट्टू होकर अपना मान–सम्मान सब कुछ खो बैठा है। इस पर कृपा करो। गुरुदेव तुरन्त तेजी से आगे बढ़कर रंगदास के सामने खड़े हो गए।

गुरुदेव ने कहा, "प्यारे रंगदास। जिस वेश्या के सौंदर्य पर इतने पागल हो रहे हो, मुझे बता इसके शरीर में कौन सी खुबसूरती है? जरा झांक भीतर की ओर। इसके तन में कहीं मल–मूत्र सड़ रहे हैं। उनसे दुर्गन्ध उठ रही है। कहीं खून के खाले चल रहे हैं। कहीं, मांस, खून से भरे लोथड़े पड़े हुए हैं? कहीं मज्जा–चर्बी, वीर्य–रज, मांस से लथपथ

हड्डियां, मुंह से लार, थूक, अन्दर का सड़ा हुआ कफ, नाक से झरता हुआ बदबू लिए हुए कचरा, आंखों में गीड़, कानों में मैल, कहीं भीतरी फोड़ों से झरता हुआ बदबूदार पीक, राध, रक्त – इस गंदगी के ढेर पर एक गौर चमड़ी – इस सड़ती हुई गन्दगी पर ही इतना आसक्त। धिक्कार है तेरे शरीर पर। धिक्कार है तेरी उफनती हुई अन्धी जवानी पर। धिक्कार है तेरी विषयों के मैल से सनी हुई इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि वपर। जितना मोहांघ तू उस वेश्या के शरीर पर हुआ, काश। यदि तूं इसी शरीर में स्थित हृदय महल में बैठे सौंदर्य, रूप माधुरी के स्त्रोत, अलौकिक मोहिनी छवि के धनी, अद्भुत रूप की खान एवं तीनों लोकों में सब से सुन्दर मनमोहन–नटवरनागर भगवान् को देख लेता, तो तेरे लिए बैकुंठ–अमरापुर का दरवाजा खुल जाता। ऐसा बोल कर गुरुदेव ने उसके मस्तक पर चांटा मारा। उन्होंने रंगदास के पापमय जीवन पर तरस खाते हुए स्पर्श मात्र से अपनी कृपा की शक्ति उसके मस्तक में उड़ेल दी। मस्तिष्क मन, बुद्धि का केन्द्र है। सेठ के शरीर में हलचल हुई। रोमांच हुआ। वहीं गुरु के चरणों में बैठ गया। समाधिस्थ हो गया।

जो संतों की निगाहों में आ जाते हैं।
सच कहता हूं वे निहाल हो जाते हैं।।

गुरु जी ने एक मीठी सी शक्ति भीर दष्टि वेश्या पर भी डाल दी। वह भी गुरु चरणों में ढह पड़ी। श्री चरणों की रज लेकर अपने माथे पर लगाई। चरण रच का इतना प्रभाव हुआ कि वह भी ध्यान की गहनावस्था में चली गई।

मेरे गुरु चरणों की धूल मस्तक लाग रही।
धूर लगी तो ऐसी लागी भीतर झलके नूर।। १।।
शून्य महल में बाजा बाजें बाजें अनहद तूर।। २।।
सत्य लोक में प्रीतम मिल गए भ्रम भये सब दूर।। ३।।
भगवान देव गुरु महिमा गावे काल पर डाल दई धूर।। ४।।

गुरुदेव शक्तिपात से, स्पर्श मात्र से, भक्त की आंखों में अपनी आंखों द्वारा, अमोघ वाणी द्वारा, गुरु कृपा–गुरु प्रसादी से अपनी शक्ति के हृदय में उड़ेल देते हैं। थोड़ी देर

के पश्चात् दोनों व्युत्थान की अवस्था में बर्हिमुख हो गए। गुरु चरणों में गिर पड़े–अरदास की –

हो मेरे सत्गुरु देव जी समझ पकड़ियों मेरी बहैयाँ।
दीन हीन और महापापी है कोई भी साधना नहैयां।।
सहारा दो तो ऐसा दीयो–फेर गिरन की नहैयां।। ३।।
छोड़कर जग के सारे सहारे आए तेरी शरणियाँ।
बांह पकड़ों तो ऐसी पकड़ियों फेर छुटन की नहियाँ।। २।।
त्रिकुटी महल के नजारे दिखा कर सिद्धों के दरस करादे।
भगवान देव ऐसी दया करियो होवे प्रीतम मिलनियाँ।। ३।।

दोनों के नयनों में अश्रुधाराएं बह रही थी। मानों एक–एक किए हुए पाप अश्रुधाराओं के माध्यम से शरीर के बाहर निकल रहे हो। पछाड़ खाकर फिर गिर पड़े श्री चरणों में। प्रार्थना की कि हम इतने पापी हैं कि आकश मंडल के तारों की गिनती की जा सकती है। पथ्वी के एक–एक रेत कण की गिनती की जा सकती है। सागर की एक–एक बूंद की भी गिनती की जा सकती है। ब्रह्माण्ड भर के प्राणियों की भी कदाचित गिनती हो जाए, किन्तु अफसोस ! हमारे पाप तो अनन्त हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। ऐसा कौन सा पाप इस धरती पर है, जो हमने न किया हो। श्री रंगनाथ जी का मन्दिर सामने था। उनके चरणों में भी पड़ कर अरदास की –

सच्चे पातशाह मेरी बख्श खता, मैं निमानां, तू बेअन्त तेरा अन्त न जाना।
दीन छोड़ दुनी संग लागा। नाम न जपिया बड़ा मैं अभागा।
कोई पुण्य न पल्ले। नरक न मैंनू झले – पाप कमाना। तू बेअन्त .... ।। १।।
दर तेरे सवाली जो आए। मुंह मंगियां मुरादां पाए।
मैं आया शरणी। लगालो अपने चरणी–विरद पहचाना .... ।। २।।
तर गए पापी तेरा नाम रटके। कट जाए चौरासी नाम जपके।
बिसरो नाहीं दातार। बख्शों चरणां दा प्यार ..... नाम जपाना .... ।। ३।।
रखना मैं नूं कुसंग से बचाके। हरिजी रखना गले नाल लाके।

रहूं अंग–संग तरे। बनालो अपना चेरे .... उपकार कमाना।। ४।।

भजन (अरदास)

टेक : एक नजर कृपा की कर दे सांवरिया गिरधारी।
जन्म–जन्म की है तेरी दासी। तेरे दर्शन की है प्यासी।
हमें अपने रंग में रंग दे सांवरिया गिरधारी।। १।।
तू जग दाता, तेरे दर के भिखारी।
दीन–दुःखियों को न दीजो बिसारी।।
जोगन की झोली भरदे–सांवरिया गिरधारी।। २।।
जल बिन मछली जैसे तड़पे। तेरे विरह में मनड़ा विलपे।
मिल आशा पूरी करदे सांवरिया गिरधारी।। ३।।
हम अवगुणी पापी हैं भारी। भगवान देव ने अरज गुजारी।।
करो कृपा पापी भी तरने दो–सांवरिया गिरधारी।।

दोनों के पूर्व जन्म के महान पुण्य उदित हुए हैं। तभी तो उन्हें संत दर्शन मिला है। हमने संतों के मुख से सुना है कि परमात्मा से भी बड़ी चीज यदि कोई है। तो वह है सद्गुरुदेव।

तुम ते अधिक गुरु जिय जानि। सकल भाव सेइए सनमानि। (रामचरित मानस)

गुरुदेव ! कृपा करो। और अधिक हमें मत भटकाओ। शरण में ले लो। नाम दान बख्शो। आपने हमें डूबते को बचा लिया। दोनों ने श्री चरणों में पड़कर प्रतिज्ञा की कि आज के बाद न तो नशा करेंगे। न पाप करेंगे। सब दुर्व्यसनों, विकारों, वासनाओं को ठोकर मार दी। वेद और गुरुदेव जैसी आज्ञा करेंगे वैसे ही फूल चढ़ाऐंगे। हम तो विषय सुख पर लट्टू हो रहे थे। आज गुरुकृपा से थोड़ी देर के लिए चित्त्वतियां शान्त हुई थी। तब भीतर से छलकता हुआ आनन्द मिला था। उस स्वाद के सामने ये विषय सुख तुच्छ हैं, फींके हैं। आंखों में अब भी मस्ती हे।

जाम पर जाम पीने से क्या फायदा–रात बीती सुबह उतर जाएगी।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

एक बार जाम पी ले फकीरी का जरा, तेरी सारी जिन्दगी सुधर जाएगी।।

बच्चे टॉफियाँ खरीद रहे थे। इतनी देर में कोई सज्जन कागज लेकर आया कि खोमचे वाले ! तू भाग्यशाली है। तेरी पच्चीस लाख की लाटरी निकली है। सुनते ही टॉफियाँ बेचने वाला खुशियों में झूम उठा। वह देखते–देखते रंक से लाखोंपति बन गया। उसने सभी टॉफियाँ बच्चों में बांट दी। कहां पच्चीस लाख रूपए की प्राप्ति का सुख और कहां चन्द रूपयों की टॉफियों का सुख। रंगदास एक झटके में पापात्मा से पुण्यात्मा बन गए। दानव से मानव बन गए। वेश्या पवित्र सती–साध्वी बन गई। गुरुदेव ने उन दोनों को नाम दान दिया। साधना करते–करते वे संत साध्वी बन गए।

गुरु और शिष्य निर्माण

भगवान निराकार हैं, निर्गुण हैं, अरूप, अनाम, अगम अनन्त है। किन्तु उनका साकार रूप देखना है, तो वह देहधारी गुरु है। प्रभु ही गुरु का जामा पहन कर धरती पर अवतरित होते हैं। उनका कितना बड़ा त्याग है, कि शाश्वत, आनन्दमय लोक का परित्याग कर अधिकारी आत्माओं का कल्याण–उद्धार करने के लिए मर्त्यलोक में आते हैं। वे साक्षात ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। ब्रह्मा रूप में शिष्यों में सद्‌गुणों, सुसंस्कारों, सदभावों, सद्‌विचारों एवं भक्ति का बीज बोते हैं। विष्णु रूप में उनका माँ की तरह पालन–पोषण, पुष्ट, विकास करते हैं। शंकर बनकर शिष्य की मलिन वासनाओं, विकारों, पापों अहंकार–अज्ञानांधकार एवं कुसंस्कारों का नाश करते हैं। बिना गुरु जीवन अधूरा है, अपूर्ण है।

गुरु बिनु भवनिधि तरे न कोई, जो विरंची शंकर सम होई। (रामचरित मानस)

स्पष्ट कर दिया गोस्वामी जी ने। चाहे ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही क्यों न हो, बिना गुरु कृपा के कोई भी भवसागर से पार नहीं उतर सकता। संसार के भौतिक पदार्थ तो अन्य साधनों से भी सुलभ हो सकते हैं। परन्तु प्रभु दर्शन के लिए तो गुरु कृपा चाहिए। शिक्षा संसार के पदार्थ देती है, किन्तु दीक्षा परमात्मा से मिलाती है। जैसे विदेश जाने के लिए भारत सरकार से पासपोर्ट लेना पड़ता है। जिस देश में जाना चाहते हैं, उसकी सरकार से वीजा लेना पड़ता है। ऐसे ही प्रभुधाम–बेगमदेश में जाने के लिए गुरुकृपा रूपी वीजा चाहिए। जैसे कुल में जन्म लेते ही बच्चा पिता की सम्पत्ति का स्वतः अधिकारी बन जाता है।

तीन लोक नौ खंड में गुरु से बड़ा न कोय।
कर्ता कुछ न कर सके गुरु करे सो होय।।
गुरु को मानुष जानते ते नर कहिए अंध।
होवें दुःखी संसार में आगे यम का फंद।।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

गुरु साक्षात् नारायण स्वरूप है। वे शिष्य के सच्चे हितैषी हैं, मित्र हैं। हर संकट में सहायक है।

सत्‌गुरु बाझों बेली न कोई
यहाँ वहाँ प्रभु राखे सोई।।

गुरु केवल इस लोक में ही नहीं, प्रत्युत परलोक में भी साथ देते हैं।

जहाँ मात–पिता सुत मीत न भाई।
मन ऊहा नाम तेरे संग सहाई।।

सत्‌गुरु का दिया हुआ नाम (नूरी गुरु) दोनों लोकों में चौबीसों घंटे रक्षा करता है। शरीर छूटने के बाद यह रूह परलोक की यात्रा करती है। यह अनेक बीहड़ वनों, जंगलों, पर्वतीय क्षेत्रों से होकर गुजरती है, तब रूह की सार–संभाल नूरी गुरु ही करता है।

कबीर ते नर अंध है, गुरु को कहते औ।
हरि रूठे गुरु ढौर है गुरु रूठे नहीं ढौर।।

शिष्य का पहला काम है – गुरु के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होना। गुरु की आज्ञा में, मौज में चलना। उसके प्रति अनन्य भक्ति, अचल निष्ठा, श्रद्धा, पूर्ण विश्वास का भाव रखना ये गुण शिष्य के जीवन में चार चांद लगा देंगे। ऐसी सोच कि मेरे गुरु साक्षात् भगवान हैं। प्रभु ही इस चोले में मेरा कल्याण करने के लिए आये हैं। उनके प्रति भगवद् बुद्धि होनी चाहिए। यदि शिष्य की तर्क बुद्धि है कि यह कुछ नहीं जानता। लोभी है – लालची है। अहंकारी है, क्रोधी है। इसको कोई तत्वज्ञान नहीं है। यदि गुरु के प्रति ऐसी भावना है तो समझ लेना चाहिए कि यहां गुरु दरबार में कुछ नहीं मिलेगा। वह महात्मा गुरु बड़ा है। उसके लाखों शिष्य हैं। बड़े–बड़े आश्रम है। ऐसा विचार कर निष्ठाऐं बदलते रहते हैं। वे तो साक्षात आवारा पशु हैं। धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। वे अपने पूर्व गुरुओं की निंदा करते–करते पापों की खान बन जाते हैं। उसके लोक–परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। हां, शिष्य को पहले परख कर लेना चाहिए।

गुरु करो जान कर, पानी पीओ छानकर।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

जैसे घड़े को बजा कर देख लिया जाता है कि यह कच्चा है कि पक्का। इसी तरह शिष्य को देख लेना चाहिए कि गुरु में भव पार कराने की क्षमता है या नहीं। यदि है, तो सर्व भोजन समर्पित कर दो। उसमें मनुष्य बुद्धि नहीं भगवद् बुद्धि होनी चाहिए। अनन्य भक्ति द्वारा न्यौछावर हो जाओ। हमारे हृदयों में अज्ञान का सघनांधकार भरा हुआ है। इसके निवारण करने के लिए गुरुकृपा चाहिए। करोड़ों सूर्य, चन्द्र उदित होकर इस अंधकार को दूर करना चाहें, तो कदापि सम्भव नहीं है। गुरु को भगवान का स्वरूप मान करके भक्ति–साधना शुरू करिए, फिर देखों जीवन का मजा। पूर्ण रूप से जीवन का रूपान्तरण हो जाएगा। तुम्हें आध्यात्मिक खजाने पर बैठने में देर नहीं लगेगी।

"गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है। गढ–गढ काढे खोटा।"
अन्तर हाथ सहारा दे बाहर मारे चोट।।

गुरु कुम्हार बन कर ऊपर से फटकार देता है, आन्तरिक विकारों को दूर करने के लिए अन्तर में दया–प्यार का सहारा देकर शिष्य का निर्माण करता है। धोबी बनकर शिष्य के अन्तःकरण की सफाई करता है। बुहारी देने वाला बन कर रज–तम के विकारों को, कचरे को दूर भगाता है। दष्टांत देखिए –

नवदीप (पश्चिमी बंगाल) में एक उच्चकोटि के राधा के अवतार चैत्तन्य महाप्रभु हुए हैं। उनके गुरु केशव भारती थे। वे कीर्तन सम्राट थे। प्रभु के विरह में नत्य करते–करते प्रेम समाधि में चले जाते थे। उनके दो शिष्यों–हरिदास, स्वामी नित्यानन्द को घर–घर में रामनाम का प्रचार करने की सेवा दी हुई थी। उसी नगरी में जगाई–मघाई ब्राह्मण कुल में जन्म लेने पर भी बड़े दुराचारी, नास्तिक, आतंकवादी, घोर दुर्व्यसनी–शराबी, जुआरी, क्वाबी, व्यभिचारी थे। गली में उनका टैन्ट लगा हुआ था। दोनों महात्माओं ने उनके दरवाजे पर दस्तक दी याचना की कि भिक्षा चाहिए। दोनों शराब के नशे में धुत थे। एक शराब का माट उठाकर नित्यानन्द के सिर पर मारा। रक्त बह उठा। महात्मा अचेत हो गया। हरिदास जी ने गुरुदेव के चरणों में जाकर घटना का सारा विवरण दिया। गुरुदेव कीर्तन मंडली को साथ लेकर घटना स्थल पर पहुंचे। देखा, नित्यानन्द बेहोश हैं। उन्होंने पानी की पट्टी बांधी। रक्त रूक गया। उसकी संकटपूर्ण अवस्था को देखकर आकाश की

तरफ मुख करके सुदर्शन चक्र को आने के लिए कहा। सुदर्शन चक्र अलारम बजाते हुए नीचे भूमि पर आने लगा। दोनों भाई सुदर्शन चक्र को आते देख कर भयभीत हो गए। चीखें मारते हुए दोनों पापी गुरु के चरणों में गिर पड़े। महाराज ! हमें बचाओ–बचाओ। हमारे से गलती हो गई हमारा अपराध क्षमा करो। इतनी देर में नित्यानन्द जी होश में आ गए। उन्होंने गुरूचरणों में दण्डवत प्रणाम किया। गुरूदेव ! इनको मारो मत। इन पर कृपा करो और सद्बुद्धि प्रदान करो। गुरूदेव ने जगाई–मघाई को नित्यानन्द जी की शरण में जाकर माफी मांगने को कहा। उन्होंने वैसा ही किया। अब पछाड़ खाकर गुरुदेव के चरणों में ढह गए। चैत्तन्य महाप्रभु ने सुदर्शन चक्र को वापस जाने की आज्ञा दी। वह जहाँ से आया था, वहीं पर चला गया।

जगाई–मघाई दोनों फूट–फूट कर रो रहे हैं। अपनी दुष्करनी पर पश्चाताप कर रहे हैं। वे शराबी, भंगेड़ी, नशेड़ी, तम्बाकू, सुल्फा, गांझा, चरस–अफीम से सुट्टे मारने वाले व्यभिचारी, जुआरी थे। जीवन पापों के गहरे दल–दल में फंसा हुआ था। वे पूरे शैतान, नरपशु, दानव, राक्षस बने हुए थे। गुरूदेव ने उन्हें दोनों बाहों से उठाकर अपने गले लगा लिया। उन्होंने दोनों के सिर हाथ रख कर उनसे प्यार किया, दुलार किया, पुचकारा। गुरू ने प्यार की लोरियां देते हुए कबीर जी का एक प्रसंग सुनाया। कबीर जी जब शरीर को छोड़कर मालिक के दरबार में गए, तब उन्होंने अपनी जीवन रूपी चद्दर प्रभु के सामने समर्पित कर दी।

जो चादर सुर नर मुनि ओढी ओढ के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीरा जतन से ओढी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।।

भगवान् ! देख लीलिए। मेरी चदरिया पर तम्बाकू, खराब, भांग, अफीम, सुल्फा आदि नशों–दुर्व्यसनों, मांस, व्यभिचार, जुआ आदि कोई भी दाग नहीं है। इसको नाम जप के साबुन और ध्यान के पानी से साफ करके स्फटिक मणि की तरह चमका कर लाया हूं। यह आपके समर्पित हैं। भगवान ने कबीर को गले लगा लिया। शाबाश !

कुछ हंस कर मरे कुछ रो कर मरे।
जिंदगी उनकी भली जो कुछ करके मरे।।

प्रभु ने कहा, "तुम अनन्त काल तक शाश्वत आनन्द भोगो। बेगमपुर देश ऐसे ही पवित्र महापुरूषों के लिए है। चैत्तन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरे प्यारो ! ये दुर्व्यसन, पाप, विकार तो जीव को अनन्त वर्षों तक नरक में ले जाएंगे। आज नहीं, प्रत्युत अभी ये सब पाप मेरी झोली में डाल दो। प्रतिज्ञा करो कि इन दुर्व्यसनों को स्वप्न में भी नजदीक नहीं आने देंगे। दोनों भाईयों ने नाक नगड़कर प्रतिज्ञा की कि मर जाना मंजूर है। हमारा वचन भीष्म प्रतिज्ञा की तरह, दशरथ और राम की तरह अटल रहेगा। ये दुर्व्यसन हमारा बाल भी बांका नहीं कर सकेंगे।

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाएं पर वचन न जाई।। (रामचरित मानस)

जगाई–मघाई पाप, दुराचार का पथ छोड़कर सदाचारी, धर्मानुरागी बन गए। दानव, नरपशु से सच्चे मानव बन गए। ये संत–गुरू ही हैं, जो गढ–गढ कर पशु जैसे मनुष्य को सच्चा मानव बनाते हैं। मैं प्रायः गाया करता हूं –

रे मानव का बनना हंसी खेल नहीं है।
मन, इन्द्रियाँ बड़ी नचावें, कैसे मानुष कहलावे।
तम्बाकू, सुल्फा का सट्टा मारें, रे दारू के पेग चढ़ावें।। १।।
तन भी मैला मन भी मैला भुंडी गाली सुनावें।
कुंडी में सोटे से भांग रगड़ कर बम–बम बोल डकावें।। २।।
कथनी सोहनी करनी काली भेष को बड़ा लजावें।
मन, इन्द्रियों को जो जीतें, मानस वे ही कहलावें।। ३।।
त्रिकुटी दशवें को जो जीते हृदय गांठ को खोलें।
भगवान देव जो, ब्रह्म को जाने अगमलोक में खेले।। ४।।

चैत्तन्य महाप्रभु के चरणों में रो–रोकर अरदास की कि हमें नाम दान दो। गुरूदेव द्रवित हो गए। गुरू कृपा के रूप में उनके मस्तक पर हाथ रखकर शक्तिपात किया। उससे जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया। नाम दान दिया। ध्यान की अटकल तकनीक बताई। तुम्हारे मन में अभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि मानसिक

विकार दहाड़ रहे हैं। ये सूक्ष्म शत्रु है। पहले तुम्हारा चिन्तन–विचार–श्रेष्ठ, शुद्ध हों। इसके लिए नाम स्मरण और ध्यान करना होगा। दूसरे तुम्हारा आचरण श्रेष्ठ, सुन्दर हो। इन दोनों के संगम से महामानव बनता है। गंगा किनारे कुटिया बनाओ। करो साधना।

मन का हुजरा साफ कर मालिक के आने के लिए।
ख्याल गैरों का हटा उसको बैठाने के लिए।।

उनकी गंगा तट पर साधना चल रही है। समय–समय पर गुरू के संदेश आ रहे हैं। मूलाधार में कुंडलिनी शक्ति जगी। मलिन वासनायें, विकार भाग खड़े हुए। लगन तीव्रतम है। दिन–रात पागलों की तरह साधना कर रहे हैं सत्वगुण प्रधान हो गया। रूहानी मंडलों को पार किया। कुछ महीनों के बाद साधना परिपक्व हो गई। सिद्धि के निकट पहुंच गुरूदेव ने आकर स्थिति देखी। पाया कि गुरू कृपा झेलने की शक्ति आ गई है। तमस, रजस मल समाप्त हो गए हैं।

गुरूदेव ने उनको सामने बिठा लिया। अन्तिम ज्ञान का गोला मारा। प्यार से कहा, "पुत्रों तुम यह, शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि नहीं हो। हम मरेंगे, हम पशु बुद्धि को छोड़ दो। जन्मना, बढ़ना, युवा बनना, घटना, वद्ध होकर अन्त में मरना – ये सब शरीर के धर्म हैं। तुम सच्चिदानन्द रूप हो। मौत तुम्हारे निकट भी नहीं आ सकती। तुम्हारी चैत्तन्य सत्ता से स्थूल, सूक्ष्म और कारण, तीनों शरीर क्रियाशील है। तुम त्रिगुणातीत हो। प्रकृति, काल, जड़ जगत से परे हो। बोलो ! हम ब्रह्म हैं, आत्मा है। "मैं" – यह मिथ्या अहंकार है। तन को ही अपना स्वरूप मान रखा है। इस "मैं" को गुरुदेव के चरणों में समर्पित कर दो। इस जड़ "मैं" के पीछे "हूं" रूप में चैत्तन्य सत्ता आत्मा साक्षी रूप में द्रष्टा रूप में खड़ा है। आत्मज्ञान गुरू कृपा हृदय में उतरती गई।

देहा भिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मने।
यत्र तत्र मनो याति तत्र तत्र परामतम्।।

अहंकार के समपर्ण से चित्ता वत्तियों से रहित शून्य हो गया। भीतर छलकता हुआ शाश्वत आनन्द के रूप में ब्रह्म प्रकट हो गया। असीम आनन्द सागर में डूब गए। बून्दें सागर में मिलकर सागर बन गई। गुरूत्व कृपा प्रसादी को पाकर जगाई–मधाई अपने

स्वरूप में स्थित हो गए। धन्य–धन्य, कृत, कृत्य हो गए। खुशियों में झूमते हुए बोल उठे –

तकदीर बदल गई मेरी गुरू जी थारे सत्संग में सत्संग में।
भूले को राह बताया। नाम दीपक घट में जगाया। हरि ॐ हरि ॐ।
मैं आया हूं शरण में तेरी सत्संग में।। १।।
तूने शील धर्म पे चलाया। तूने योग का ध्यान कराया। हरि ॐ हरि ॐ।
ज्ञान आंख खुली हैं, मेरी सत्संग में।। २।।
तूने अनहद बाजे सुनाए। तूने नूरी नजारे दिखाए। हरि ॐ हरि ॐ।
हुई प्रीतम मिलनी मेरी सत्संग में।। ३।।
तूने बेगम देश पहुंचाया। प्रीतम का दरस कराया। हरि ॐ हरि ॐ।
मिली मुक्ति न लागी देरी सत्संग में।। ४।।

अन्त में गुरू प्रसादी पाकर जगाई–मधाई संत बन गए। दूर–दूर क्षेत्रों में जाकर धर्म भक्ति का प्रचार किया। उनका कहना था।

हम न हंस कर सीखें हैं, न रोकर सीखें है।
जो कुछ भी सीखें हैं, सद्गुरु के होकर सीखें हैं।।

शब्द

ब्रह्म ज्ञान का गोला मारा – माया गढ़ को ढ़हाया।
रे साधो भाई विष्णु अमरपद पाया।
मूलाधार में नागिन जगाई घट में प्रकाश है छाया।
धुर–धुर प्राण चढ़े गढ ऊपर, त्रिकुटी महल दरशाया।। १।।
जगमग ज्योति जगे दिन राती अनहद नाद घुर्राया।
दशवें महल का अजब नजारा। सिद्धों का दर्शन पाया।। २।।
शून्य महाशून्य भंवर गुफा में माया ने जाल फैलाया।
सत्यलोक में प्रीतम मिलेगा भ्रम अज्ञान नशाया।। ३।।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

चौदह चौकी जमां की तोड़ी काल को मार भगाया।

कहे भगवान देव सुनो भाई साधो आवागमन मिटाया।। ४।।

सिर उपरि ठाढा गुरू शूरा

नानक ताके कारज पूरा।।

घट में है सूझत नहीं लानत ऐसे जिंद।

तुलती ऐसे मीत को भयो मोतियाबिंद।

ओ प्यारे ! तेरे घट में प्यारा प्रीतम बैठा है। उसको जानने के लिए श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ– गुरू की शरण में जा। जिसके सिर पर पूरे गुरू की कृपा का हाथ होता है। वह घट में ही प्रभु को देख लेता है।

गुरु कृपा के लिए दीक्षा–श्रद्धा जरूरी

गुरू प्रसादी के लिए शिक्षा नहीं दीक्षा–श्रद्धा वांछनीय है। शिक्षा वाह्य जीवन के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। डिग्रियाँ, उपाधियाँ मिलेगी। नौकरियों में सहयोगी होंगी। लौकिक धनैश्वर्य भी बटोरेंगी। मान–सम्मान भी दिलाएंगी। व्यक्तित्व के विकास में बेहद सहाय होंगी। किन्तु रूहानियत – आध्यात्मिकता के ज्ञान–विज्ञान में शिक्षा की कोई भूमिका नहीं। कई लोगों की धारणा है कि वेद पढ़ने से ही भगवान मिलेंगे। मुक्ति हस्तगत होगी। यह बिल्कुल कोरी कल्पना है, दिवास्वप्न है। इसमें कोई सत्यता नहीं है। सांसारिक शिक्षा तो अहंकार को पुष्ट करती है। मैं पंडित हूं, मैं वैज्ञानिक हूं, मैं इंजीनियर, डाक्टर हूं – इन शब्दों में तो अहंकार रूपी शैतान की गर्जना है। परन्तु मैं इस शिक्षा का भी पक्षधर हूं। इससे बाह्य ज्ञान–विज्ञान में बहुत सहायता मिलती है। सांसारिक यात्रा सुखद होती है। यह कह दिया जाए कि विद्या और शिक्षा एक दूसरे की पूरक है, पोषक है, तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

जो सादर गोविन्द धियावे।
पढिया अपढिया परम गति पावे।।
नाम लिया उन्होंने जान लिया सकल शास्त्र का भेद।
नाम बिना नरक में गया पढ पढ चारों वेद।
चार अठारह ग्यारह पढे षट पढ खोया मूल।
परमात्मा जाना नहीं ज्यों पक्षी चंडूल।।

प्यारे प्रीतम से मिलना है, तो शिक्षा की बजाय दीक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा संसार की तरफ ले जाकर अहम् से बांधती है। दीक्षा और श्रद्धा प्रभु के दर्शन कराती है। यहाँ पढ़ाई नहीं, गुरु कृपा पाने के लिए आत्मसमर्पण चाहिए। शबरी, धन्नाजट, सेन भक्त, सदना, रांका–बांका, कबीर, तुकाराम आदि हजारों ऐसे भक्त हैं, जिन्होंने 'मसि कागद छूयो नहीं कलम गही नहीं हाथ।' उन्हें स्वर–व्यंजनों–अक्षरों का भी ज्ञान नहीं था। कोरे, ठेढ अनपढ़ थे। किन्तु गुरु कृपा पाकर वेदों के विद्वानों को वेद पढ़ाते थे। जैसे तोता को पढ़ाने पर सीताराम, ॐ नमः शिवाय, श्री राम जय राम जय जय राम, श्रद्धया सत्यमाप्यते,

आदि वेद सूत्र बोलता रहता है। किन्तु बेचारा तोता मंत्रों के भावों, मर्मों से अनभिज्ञ रहता है। जिसने वेद पढ़कर प्रतिपादित तत्व को, वेद के रहस्य को नहीं जाना, उसकी स्थिति तो चंडूल पक्षी जैसी होती है। उस पक्षी को जो पढ़ाया जाता है, वही रटता रहता है। बेचारा वेद के मर्म को क्या जाने। बहुत से दिग्गज पंडितों और विद्वानों को वेद शास्त्र कण्ठस्थ है। किन्तु उन पर आचरण नहीं है। जिन्होंने वेदों द्वारा प्रतिपादित तत्व ब्रह्म को नहीं जाना, उनको वेदों के पढ़ने से क्या लाभ? 'आचारहीनम न पुनन्ति वेदाः।' वेद आचार हीन को पवित्र नहीं करते हैं। वे कोरे के कोरे रह जाते हैं।

एक बार वेदों का प्रकाण्ड पंडित, वेद–शास्त्र–उपनिषदों, आर्ष ग्रन्थों से भरी हुई गाड़ी में बैठकर श्री रामकृष्ण परमहंस से शास्त्रार्थ करने के लिये आया। वेदों की चर्चा करने–शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं जुटा सका। राम कृष्ण परमहंस की चित्तवत्तियां शान्त थी। विलक्षण ब्रह्म रस से सरावोर थे। उनके रोम–रोम से सात्विक अनन्द की धाराएं फूट रही थी। उनकी मस्ती का प्रभाव पंडित जी पर पड़ा। बर्फ के पर्वत के निकट जाएंगे, तो ठण्डक अवश्य मिलेगी। चन्दन के पेड़ के नजदीक जाने से मानव अनूठी सुगन्धि से मस्त हो ही जाता है। पंडित जी आनन्द से अभिभूत हो गए। चुपके से वापस जाते समय उनके शिष्यों को कहा, "धन्य है तुम्हारे गुरू रामकृष्ण परमहंस।" तुम्हारे गुरू तो साक्षात् आनन्द की मूर्ति है। धन्य हैं आप जैसे सद् शिष्य, जिन्हें गुरू कृपा का रस मिला है। मैंनें वेद–शास्त्र सहस्त्रों पवित्र ग्रन्थ पढ़ें हैं। किन्तु कोई शान्ति नहीं मिली। मैंने तो व्यर्थ सैंकड़ों शास्त्रों, वेदों, ग्रन्थों का भार सर पर ढ़ोया है। आज अद्भुत रस की अनुभूति अनपढ़ राम कृष्ण परमहंस के सान्निध्य में मिली।

एक बार कुछ कांशी के पण्डित विद्या पढ़ने के उपरान्त अपने घरों को लौट रहे थे। मार्ग में पवित्र गंगा नदी पढ़ती थी। नाव में बैठकर गंगा पार करने लगे। एक पण्डित ने मल्लाह से पूछा, "तुम्हें इतिहास की जानकारी है?" उसने नकारात्मक उत्तर दिया। तो पंडित जी ने अफसोस जताया कि तब तो तुम्हारी एक चौथाई उम्र व्यर्थ चली गयी। तभी दूसरे पंडित ने पूछा, "तुम्हें भूगोल का ज्ञान तो अवश्य होगा।" उत्तर नहीं में ही मिला। तीसरे पंडित ने भी अफसोस जताया कि, तुम्हारा तीन चौथाई जीवन व्यर्थ बरबाद हो

गया। संयोग से नदी में बाढ़ आ गई। तूफान से नाव डगमगा उठी। केवट ने पूछा, विद्वानों ! क्या आपको तैरना आता है? यह विद्या सीखी कि नहीं? वे कहने लगे तैरना कैसे होता है। हम तो नहीं जानते? मल्लाह चिल्लाया। सावधान। नाव डूबने वाली है। यदि तैरना आता है, तो कूछ पड़ो नदी में। तैरते हुए किनारे पर लग जाओ। यदि नहीं तैरना आता, तो मेरी तो सिर्फ तीन चौथाई आयु नष्ट हुई थी, किन्तु आपका तो सम्पूर्ण जीवन ही नष्ट हो जाएगा। मल्लाह ने छलांग लगा दी। तैरता हुआ नदी तट पर पहुंच गया। तीनों पंडित डूब गए। वेद जिस परमात्मा की ओर संकेत करते हैं, यदि गुरूमुख होकर संसार सागर में तैरने की कला, अटकल, ज्ञान, पराविद्या को प्राप्त न किया, तो विषय जल से भरे हुए भवसागर में डूब जाएंगे। सारा जीवन व्यर्थ चला जाएगा। निःसन्देह अपरा—सांसारिक विद्याएं लौकिक सुख तो दे देंगी, किन्तु यह सब अविद्या का ही जाल है। पारलौकिक सुख नहीं दे सकती।

"सा विद्या या विमुक्तये।"

विद्या वह है जो मुक्ति देती है। जीव को अमत पिला कर अमर कर देती है। आत्मा को प्रभु से मिलाती है। जगद्गुरू शंकराचार्य के चार प्रमुख शिष्य थे। पद्मपादाचार्य, हस्तामलकाचार्य, सुरेश्वराचार्य और तोटकाचार्य। तोटकाचार्य की बुद्धि मंद थी। पढ़ा हुआ याद नहीं रहता था। गुरू जी ब्रह्मसूत्र पढ़ाया करते थे। तोटकाचार्य के आने की प्रतीक्षा थी। आ जाए तो पाठ प्रारम्भ किया जाए। शेष तीनों शिष्य विद्वान थे। उनकी बुद्धि प्रखर थी। जो कुछ पढ़ते वह सब कण्ठस्थ कर लेते थे। उन्होंने गुरू जी से कहा "तोटक तो निरा मूर्ख है, जड़ बुद्धि है।" उसकी क्या इंतजार करनी है। गुरू जी ने भाँप लिया कि तीनों को विद्या का मद है। यह अहंकार टूटना चाहिए। भगवान और गुरू दोनों ही यही चाहते हैं कि कहीं भक्तों में अह्म जड़ न जम ले। तोटक पढ़ने में जीरो था। किन्तु गुरू भक्ति के मतवाले थे। वह गुरू के लिए पूर्ण रूप से समर्पित है। उसका निजी जीवन नहीं है। मन, बुद्धि सब कुछ अर्पित हैं। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं है। सब कुछ गुरू की मौज, गुरू की आज्ञा। गुरू जी के स्थानार्थ और पीने के लिए गंगा जल लाते। कुटिया की सफाई करते। पूजा पात्र तैयार करके रखते। समय पर प्रातः नाश्ता लाते। गर्म—गर्म

भोजन तैयार कर खिलाते। उनके वस्त्र धोते, बर्तन गंगाघाट पर साफ करके लाते। चौबीसों घण्टे गुरू सेवा में छाया की तरह रहते थे। सचमुच वे गुरू जी के सजीव मित्र थे। उनका उर आंगन तैयार था चार साधन सम्पन्न थे। विनम्रता, दीनता की मूर्ति थे। उनका तन भी पवित्र और मन भी निर्मल था। केवल एक गुरूदेव की कृपा प्रसादी की ढ़ील थी। इतनी देर में गुरू चिन्तन करते हुए तोटक आ गए। विनम्रता, श्रद्धा की तस्वीर तोटक ने गुरू चरणों की धूल लेकर जैसे ही माथे पर लगाई वैसे ही गुरू ने अपना वरद हस्त शिष्य के सिर पर रख दिया। दष्टिपात की। गुरू कृपा बरसी। चित्तवत्तियाँ निरूद्ध हो गई। हृदय में ब्रह्मज्ञान छलकता हुआ बहने लगा। गुरू प्रसादी मिली तो क्षण भर में समाधिस्थ हो गए। तन की सुधि जाती रही। गुरू प्रसादी व प्रभुप्रसादी एक ही बात है। प्रभु और गुरू दोनों अभिन्न है, एक है। समझाने के लिए कह देते हैं कि जैसे ही गुरूकृपा रूपी आत्मज्ञान मानस में प्रकट हुआ, वैसे ही अन्तःकरण के निरूद्ध स्त्रोतों के खुलने से शाश्वत आनन्द, अमतरूपी प्रभु कृपा प्रकट हो गई।

जो घट में घट दिखलाय दे सो सत्गुरू पुरूष सुजानो।

जब बहिर्मुख हुए, तब तोटक गुरू के चरणों में गिर पड़ा। गुरू ने आनन्द से झूमते हुए शिष्य को गले लगा लिया। कहा, पुत्र मैंने अब तक जो पढ़ाया है और अब आगे क्या पढ़ाऊंगा, वह सब बताओ मुझे। ब्रह्म सूत्र में जो पढ़ाया था, वह गुनगुनाने लगा। सरस्वती जिव्हा पर आकर बैठ गई। जो आगे गुरूदेव ने पढ़ना था, वह भी उसकी वाणी से झरने लगा। तीनों विद्वान शिष्य लज्जिल होकर गुरू चरणों में ढह गए। उनका अहंकार चूर–चूर हो गया। गुरूदेव ! हम अब तक समाधिरस का पान नहीं कर सके। आपने तोटक को क्षणभर में गुरूप्रसादी प्रदान कर दी। हम विद्या के अभिमान में ही डूबे रहे। क्षमा करो। हम पर भी गुरूकृपा करो। जिस तोटक को उपेक्षा की दष्टि से देखते थे, अब उसको गुरू का कृपापात्र मान कर गले लगा लिया। अतः गुरूकृपा के लिए – शिक्षा – पढ़ाई की नहीं, बल्कि आत्मसमर्पण की आवश्यकता है।

पानी दो तत्त्वों के मेल से बनता है – हाईड्रोजन और ऑक्सीजन। ये दोनों आस–पास के वातावरण में रहते हैं। परन्तु ये अपने आप नहीं मिलते। इसलिए जलवर्षन

नहीं होता। इसके लिए एक केटेलेटिक ऐजेंट की आवश्यकता है। वह है विद्युत प्रवाह। उसकी उपस्थिति मात्र से दोनों का मेल होकर जल बरसने लगता है। इसी प्रकार आत्मा–परमात्मा दो तत्व है। इनका मेल कराता है – बिचौला गुरूदेव। जैसे सूर्य की उपस्थिति मात्र से सारा ब्रह्माण्ड प्रकाशित होता है। प्राणी स्वतः कार्यरत हो जाते हैं। पूर्णमासी के चन्द्रमा की विद्यमानता मात्र से सागर में ज्वार भाटा आ जाता है। वैसे ही गुरूदेव के सान्निधान मात्र से शिष्य अपने आपको समर्पित कर देता है। धीरे–धीरे मलिन वासनाएं व विकार लुप्त होने लगते हैं। अन्तःकरण प्रखर–प्रांजल हो जाता है। गुरू कृपा होती है और अन्तर में बैठा हुआ भगवान आत्मा के सामने अपने स्वरूप को प्रकट कर देता है। आत्मा से कुछ भी नहीं छुपाता। आत्मा–परमात्मा का एकाकार हो जाता है। एक तो थे ही। अज्ञान से दो दीख रहे थे।

आजकल बहुत से शिष्यों का यह कहना है कि हमें ध्यान में कुछ नहीं दिखाई देता। मन कहीं–का–कहीं भाग जाता है। माला हाथ में घूमती रहती है और मन देश देशान्तरों में दौड़ता रहता है। रवि और रजनी एक स्थान पर नहीं ठहर सकते। वैसे ही भगवान और शैतान भी इकट्ठे नहीं रह सकते।

One can not serve God and Mamon at one and the same time.

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती। हम चौबीसों घण्टे भोगों द्वारा मन, इन्द्रियों को तुष्ट करने में लगे रहते हैं। भोगों में मायाजाल में फंस कर भगवान को विस्मत कर दिया। चौबीस घण्टे में भगवान की भक्ति के लिए एक घण्टे का समय भी देने के लिए तैयार नहीं है। भोगों में रचे–पचे हैं। मौत को बिल्कुल भुला दिया।

हंस हंस कंत न पाइए जिन पाया तिन रोय।
हंसे खेले पीया मिले तो कौन दुहागन होय।।

संत एकानाथ के पास एक सेठ आया। महाराज ! जब ध्यान में बैठता हूं, तो मन नहीं लगता। एकनाथ जी ने कहा, "अगले रविवार को बारह बजे तेरी मत्यु है।" कोई उपाय करो। नाम जपो तो शायद बच जाओ। ध्यान की युक्ति बता दी। सेठ के मस्तक पर मौत सवार हो गई। वह एक कमरे में आसन पर बैठ गया। नाम–ध्यान में जुट गया।

काल से बचने और प्रभु से मिलने की लगन लग गई। खाना–पीना छूट गया। घर से मोह छूट गया। प्रीति प्रभु चरणों में लग गई। तीसरे दिन ही गहन समाधि में चला गया। शरीर की सुध–बुध भूल गया। सैकड़ों लोग दर्शनार्थ आने लगे। राजा, रानी भी आये, भीड़ लगी है। भेंट, उपहार चढ़ा रहे हैं। रविवार का बारह बजे का समय समाप्त हो गया। गुरू एकनाथ ने सिर पर हाथ रखा। समाधि खुल गई। गुरू कृपा बरसी। सेठ गुरू चरणों में लिपट गया। गुरूदेव ! आपने मुझे मत्यु से बचा लिया। जो रस मैंने समाधि की अवस्था में चखा है, उसका यह वाणी वर्णन नहीं कर सकती। मैं आपके उपहार को कभी भूल नहीं पाऊंगा। मैं हजार जन्म धारण करके भी आपके श्री चरणों की सेवा करूं, तो भी आपका ऋणी ही रहूंगा। मुझे सिवाय प्रभु के और कुछ अच्छा नहीं लगता।

कृपा की न होती तो आदत तुम्हारी।
तो सूनी ही रहती अदालत तुम्हारी।।
जो दीनों के दिल में जगह तुम न पाते।
तो फिर किस दिल में होती हिफाजत तुम्हारी।।

गुरु की महिमा का गान करने लगा।

रे गुरू मेहर करें तो कागों से हंस बना दे।
विषय विकारों में फंस कर के काला दागी होया।।
गुरूदेव की लो शरणाई सारे दोष मिटा दें।। १।।
गुरू चरण की कर लो सेवा धूलि मस्तक लाय।
नाम ध्यान का साबुन ला के तीनों काया धोदें।। २।।
त्रिकुटी महल की चाबी लेकर अन्तर के पट खोलें।
ज्योति चमक बाजे बाजें गगन की सैर करादें।। ३।।
पैड़ी–पैड़ी ले जा करके गैबी देश पहुंचा दें।
कह भगवान देव सुनो भाई साधो पिया से मेल करादें।। ४।।

लगन हो तो सेठ जी जैसी, शबरी, मीरां और फिर एकनाथ जैसी। संत एकनाथ जी के गुरू देवगढ़ के दीवान जर्नादन स्वामी थे। छोटी आयु में एकनाथ जी ने कई वर्षों तक

जो गुरू की सेवा की – वह श्लाघनीय है। दिन में गुरूदेव की सेवा और रात्रि में भजन ध्यान। एक दिन दरबार का हिसाब–किताब करने का दायित्वव मिला। हजारों–लाखों रूपयों का हिसाब था। दोपहर बाद सेवा में जुट गया। हिसाब–किताब लिखते हुए पता लगा कि एक पाई की भूल आ रही है। रात आई। उसके आगे कोई दीपक जला कर रख गया। भूल गया रोटी–पानी को। एक पाई की भूल निकालने में रात के चार–पांच बज गए। पांच बजे गुरूदेव उसके सामने आकर खड़े हो गए। उसको उनके आने का पता ही नहीं लगा। इतनी देर में मिल गई भूल। वह हर्ष से उछल पड़ा। गुरूदेव ने कहा, "बेटा ! क्या मिल गया।" सामने गुरूदेव को देखकर चरणों में गिर पड़ा। सारी घटना बताई। बेटा ! एक पाई की भूल में तुम इतने पागल हो गए। जब मिली तो तेरी खुशियों का कोई ठिकाना नहीं। जिस दिन संसार की भूल मिलेगी उस दिन तो तेरे आनन्द का पारावार ही नहीं होगा। गुरूत्व उछल पड़ा। गुरूकृपा छलांग लगाने लगी। गुरू ने मस्तक पर हाथ रखा। एकनाथ जी गहन ध्यान में चले गए। आंखे खुलने पर गुरू ने अपनी छाती से लगाकर कहा, "पुत्र ! मेरी आध्यात्मिक वसीयत आज तेरे को सौंपता हूं। तुमने जो कुछ पाना था पा लिया।" देखना था, देख लिया। जानना था, जान लिया। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। हजारों जीवों का कल्याण तुम्हारे हाथों होगा। आज से तेरे को गुरूपद पर अधिष्ठित करता हूं।

प्राचीन काल में आयोद धौम्य नामक ऋषि थे। इनके आश्रम में उपमन्यु, आरूणि, उत्तंक, वेद–चार शिष्य वेदाध्ययन करते थे। आरूणि सदाचारी, धर्मानुरागी एवं जबरदस्त गुरूनिष्ठ थे। एक दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी। गुरूदेव ने आरूणि को खेत की सार संभाल रक्षा करने की आज्ञा दी। 'सत् वचन' कहकर आरूणि चल पड़ा। खेत में जाकर देखा, तो एक डोला टूटा पड़ा है। सारा पानी बाहर निकल रहा है। यदि पानी न ठहरा, तो फसल को हानि होगी। वह डोले की कट को भरने के लिए मिट्टी डालने लगा। किन्तु जल की तेजधार उसको बहा देती। अन्त में वह जल को रोकने के लिए स्वयं ही कट पर लेट गया। पानी निकलना बंद हो गया। रात्रि व्यतीत हो गई। आरूणि का शरीर ठिठुर गया, जुड़ गया। शरीर वेदनाग्रस्त हो गया। प्रातः नमस्कार करने के लिए नहीं आया, तो गुरूदेव को चिन्ता हो गई। उन्होंने कहा "आरूणि कहाँ है?" गुरूदेव शिष्य मंडली को

लेकर खेत में गए। देखा, टूटी हुई पाल पर बांध बन कर आरूणि पड़ा है। दौड़कर गुरूदेव ने उसको उठाया। अपने गले से लगाकर आलिंगन किया। आज गुरू और शिष्य एक हो गए हैं। सारा विवरण सुनकर गुरू जी ने कहा, "बेटा आरूणि ! तेरे सेवाभाव और गुरू निष्ठा पर मुझे बेहद प्रसन्नता है।" मेरी लम्बे समय की तपस्या है। मैं तुझे आशीर्वाद देता हूं कि बिना पढ़े ही वेद–शास्त्र तुम्हारे हृदय में अपने रहस्य प्रकट करेंगे। तुम ऋषि उद्दालक के रूप में सुविख्यात होंगे। ब्रह्म विद्या तेरे अन्तःकरण में स्वतः प्रकट हो जाएगी। उसे आध्यात्मिक खजाना देकर माला माल कर दिया। वैदिक युग में शिष्यों को खेती करनी, गौओं की सेवा करने आदि कठोर सेवाएं सौंपी जाती थी वे कसौटी पर खरे उतरते थे।

बाबा फरीद – फरीद एक आदर्श उच्चकोटि के अनन्य गुरू भक्त हुए हैं। उनकी गुरूनिष्ठा आजकल के भटके हुए चंचल शिष्यों को प्रेरणा देने वाली है। एक बाद उनके गुरूदेव ख्वाजा बहाउद्दीन ने एक आवश्यक कार्य करने के लिए फरीद को मुलतान नगरी में भेजा। वहां उन्होंने एक तमाशा देखा। शम्सतबरेज फकीर की उन दिनों तूती बोलती थी। उनके शिष्यों ने एक दरवाजा बना कर डोंडी पिटवा दी कि आज जो व्यक्ति इस दरवाजे से गुजरेगा, वह सीधा स्वर्गलोक में जाएगा। क्या गहस्थी, क्या फकीर, सब दरवाजे से निकलने के लिए उमड़ पड़े। मित्रों ने फरीद को भी दरवाजे से गुजरने के लिए कहा कि ऐसा सुअवसर फिर नहीं मिलेगा। मुफ्त में स्वर्ग के सुख मिलेंगे। फरीद ने इस बात की अनसुनी की और गुरू कार्य करके गुरू चरणों में लौट आया। गुरूदेव ने बातों–बातों में पूछा, "वहां नगर में कोई महत्त्वपूर्ण घटना घटी है?" फरीद ने सारी घटना सुना दी। बेटा ! यदि आज मैं मुल्तान नगर में होता तो स्वर्ग देने वाले दरवाजे से अवश्य गुजरता। तुमने तो आज गढ़ जीत लिया होगा। फरीद ने कहा, "गुरूदेव ! मैंने तो आपकी शरण ली है। गुजरूंगा तो आपके दरवाजे से गुजरूंगा। किसी दूसरे पीर–फकीर के दरवाजे से नहीं गुजरूंगा। गुरूदेव ने भक्त की निष्ठापूर्ण अनन्य भक्ति से भावाभिभूत होकर फरीद को गले से लगा लिया और कहा, "बेटा ! तुम्हारा दरवाजा तो ऐसा खुलेगा कि उसमें से हर बहस्पतिवार को जो निकलेगा, वह सीधा स्वर्ग लोक में जाएगा। पाकिस्तान में पाकपट्टन कस्बे में बने हुए दरवाजे से गुजरकर हर गुरूवार को हजारों श्रद्धालु अपने

जीवन को धन्य–धन्य समझ रहे हैं। गुरूभक्ति हो तो ऐसी अनन्य हो। आजकल तो भक्ति अनन्य नहीं, फनन्य है। आवारा पशुओं की तरह एक गुरू को छोड़कर दूसरे, दूसरे से तीसरे के पास जा रहे हैं। "धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का"।

भक्त फरीद नित्यप्रति प्रातः अपने गुरूदेव के स्नान हेतु गरम पानी किया करते थे। एक दिन मूसलाधार वर्षा के कारण चूल्हें में अग्नि नहीं मिली। एक निकटवर्ती ग्राम में गया। केवल एक नास्तिक के घर में चिराग जल रहा था। फरीद ने उससे अग्नि मांगी। शैतान ने कहा, "अपनी एक आंख दे दो और अग्नि ले जाओ।" उसने तुरन्त चाकू से अपनी आंख निकाल कर उसको दे दी। बदले में अग्नि ले आया। गरम पानी करके गुरूदेव को स्नान कराया। एक आंख में रक्त देखकर पूछा, "यह क्या बात है?" फरीद ने ज्यों ही सारा विवरण दिया, त्यों ही गुरूदेव ने उसको अपनी प्यार भरी बाहों में समेट लिया। मस्तक पर हाथ रखा। नूरी नजारों के दर्शन कराए। निष्काम समर्पित सेवा देखकर उसे आध्यात्मिक खजानों का स्वामी बना दिया। गुरूकृपा ऐसी बरसी की फरीद ब्रह्मस्थ हो गया। देह में रहते हुए भी विदेह की अवस्था में चला गया। वह जीवनमुक्त होकर धरती पर विचरने लगा। हजारों लोगों को, जो उनकी शरण में जाए, उन्हें भी भवसागर से पार ले गया। धन्य है फरीद की समर्पित गुरू भक्ति।

उपमन्यु : महर्षि आयोद धौम्य के आश्रम में उपमन्यु नामक शिष्य सेवा रत था। गौओं की सेवा उसके जिम्मे थी। एक दिन उसे पूर्ण स्वस्थ देखकर गुरूदेव ने कहा, "वत्स ! तुम क्या खाते हो?" शिष्य ने कहा, "गुरूवर ! आपको भोजन कराने के बाद जो शेष रह जाता है, उस प्रसाद को गहण करता हूं।" गुरू ने ऐसा करने से मना कर दिया। कुछ दिन के पश्चात् फिर पूछा, "अब आप क्या खाते हो?" उत्तर मिला कि गायों का दूध पीता हूं। "भविष्य में ऐसा न करना।" गुरूदेव ने एक दिन फिर पूछा, अब आप क्या खाते हो? उत्तर दिया कि बछड़े के मुख से गिरा हुआ दूध का झाग। नहीं आगे से ऐसा न करना। गुझ अपने शिष्य की गढ़त कर रहे हैं। बाहर से वज्र की तरह कठोर और अन्दर स्नेह, दया और फूल जैसे कोमल।

गुरू कुम्हार शिष्य कुंभ है घड़ घड़ काढे खोट।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

अन्तर हाथ पसार दे बाहर मारे चोट।।

एक दिन उपमन्यु तीव्र क्षुधाग्रस्त होकर आक के पत्ते खाने से अन्धा हो गया और कुएं में गिर पड़ा। गुरूदेव शिष्य मंडली को साथ लेकर घटनास्थल पर गए। आवाज दी, बेटा ! कहां हो? उपमन्यु ने कहा, कुएं में हूं। सारी घटना की जानकारी दी। बेटा ! स्वर्ग के वैद्य अश्विनीकुमारों का स्तवन करो। वे तुम्हारी आंखें ठीक करेंगे। वैसा ही किया। अश्विनीकुमारों ने स्तुति से प्रसन्न होकर मिष्ठान युक्त औषधि खाने के लिए दी। उपमन्यु ने गुरू को भोग लगाए बिना खाने से इन्कार कर दिया। अश्विनी कुमार उसकी अनन्य गुरूभक्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसे नेत्र ठीक होने का वरदान दिया और अर्न्तध्यान हो गए। उसको कुएं से बाहर निकाला। गुरूदेव के अर्पित करके औषधि सेवन की। पूर्वव्त स्वस्थ नेत्रयुक्त हो गए। गुरू कृपा उमड़ी। निष्काम सेवा और गुरू भत्ति देखकर गुरू का दिल भर आया और दोनों हाथों से चरणों में पड़े हुए उपमन्यु को छाती से लगा लिया। माथा सूंघा, दुलारा, पुचकारा। अपनी रहमत बरसाते हुए कहा, वत्व ! तुम्हारी तपस्या पूर्ण हुई। अपनी आध्यात्मिक सम्पदा से शिष्य को निहाल कर दिया। बिना पढ़े ही सब विद्याएं हस्गत हो जाएंगी।

गुरू अंगददेव – एक बार गुरू नानक देव जी धान के खेत में घास निकलवा रहे थे। इतनी देर में उनके शिष्य भाई लहणा नवीन रेशमी वस्त्र एवं स्वर्णिम आभूषण धारण किए हुए आ गए। मत्था टेका। सेवा में जुट गए। खेत से घास उखाड़कर उसका गट्ठा बना कर सिर पर धारण करके घर को चल दिए। रेशमी वस्त्र, आभूषण सब कीचड़ से सन गए। माता सुलक्षणी ने कहा, "यह घास अमीर व्यक्ति के सिर पर क्यूं रखा।" सब वस्त्र मलिन हो गए। सेवा से अभिभूत गुरू की प्रसादी–कृपा अंगड़ाई ले रही थी। मुख से कृपा के शब्द फूट पड़े। इसकी शोभा बिगड़ी नहीं, बल्कि द्विगुणित बढ़ी है। ये कीचड़ के छींटे नहीं केसर के हैं। इसके सिर पर घार का गट्ठा नहीं, त्रिलोकी का छत्र रखा है। इसकी शोभा सारे विश्व में बढ़ेगी। उसे गुरगद्दी देकर भाई लहणा से गुरू अंगददेव बना दिया।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

पादपद्माचार्य – एक दिन शंकराचार्य जी कांशी में रहते हुए अपनी शिष्य मंडली के साथ गंगा घाट पर स्नानार्थ गए। एक नौका पर सवार होकर शंकराचार्य गंगा के परले किनारे चले गए। वहां स्नान–संध्या की। कोई नाव थी नहीं। इसलिए जोर से आवाज लगाते हुए शिष्यों को पुकारा कि मेरे वस्त्र लाओ। गीले नहीं होने चाहिए। गंगा की धारा तेज थी। तब शिष्य खुसर–पुसर करने लगे। तेज धारा देखकर घबरा गए। इतनी देर में एक माई के लाला सनन्दन ने गुरू जी के वस्त्र सिर पर बांध कर गंगा में छलांग लगा दी। गुरू कृपा बरसी। उसके लिए कमल पत्रों का मार्ग बन गया। उस पर चलते हुए परले किनारे पहुंच कर गुरूदेव के चरणों में मत्था टेकते हुए समर्पित किए। साहस पूर्ण सेवा देखकर शंकराचार्य का मन द्रवित हो गया। उन्होंने कहा, "आज से सनन्दन के स्थान पर तेरा नाम पादपद्माचार्य होगा। मेरी दी हुई विद्या फलेगी। तेरा नाम संसार में अमर रहेगी। शेष शिष्यों ने भी उसके साहस सेवा की प्रशंसा की।

गुरू महिमा के भजन

भजन नं॰ १

गुरूदेव मेरे तुमको, भक्तों ने पुकारा है।
आओ अब आ जाओ इक तेरा सहारा है।।
है चारों तरफ छाया, मेरे घोर अंधेरा है।
अब जाएं कहां बोला, तूफानों न घेरा है
हे नाथ अनाथों को तेरा ही सहारा है।। १।।
मंझधार पड़ी नैया, डगमग डोला खाए।
बनकर आओ खेवट, हम भव से तर जाएं।
बिन तेरे नहीं जग में, एक पल भी गुजारा है।। २।।
तेरे इन चरणों की, जरा धूल जो मिल जाए।
भटके हुए राही को, निज मंजिल मिल जाए।
तकदीर बदल जाए, मिले प्रीतम प्यारा है।। ३।।
सत्‌गुरू कृपा बरसी, दिव्य अमर ज्योति दरसी।
ब्रह्मानन्द छलक गया, रस से हृदय भर गया।
भगवान देव पाया विश्राम, जिसका आर न पारा है।। ४।।

भजन नं॰ २

गुरूदेव विनय मेरी, चरणों में लगा लेना।
मैं आया शरण तेरी, सोए को जगा देना।।
तू दीन दयालु है, मैं दीन–हीन सेवक।
भव सागर तारन को बन जाओ मेरे खेवट।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

नैया मंझधार पड़ी, गुरू पार लगा देना।। १।।

तू ज्योति ज्ञान स्वरूप, मैं अज्ञान में भटक रहा।

चौरासी फेरे में दुःख पर दुःख उठा रहा।

मेरी बुद्धि भ्रम रहीं, ज्ञान दीपक जला देना।। २।।

तू आदि देव है ब्रह्म, मैं जीव हूँ दास तेरा।

चाहे अच्छा हूं या बुरा, गुरू जैसा हूँ तेरा।

भूली भटकी रूह को गुरू गले लगा लेना।। ३।।

'भगवानदेव' गुरूदेव, गुण गावत हूँ तेरा।

छोड़ सहारे सब, दामन पकड़ा तेरा।

मेरा काटो यम फेरा, हरि दरस करा देना।। ४।।

भजन नं॰ ३

बहारो फूल बरसाओ, मेरे गुरूदेव आए हैं।

जीव कल्याण करने को इलाही नूर आए हैं।।

मेरा जीवन हुआ पावन, गुरू की चरण धूलि से–गुरू की चरण धूलि से।

अंधेरा दूर करने को उजाला बन कर आए हैं।। १।।

नाम का दान देकर के जगाई शक्तियां मेरी, जगाई शक्तियाँ मेरी।

भवतारण उबारन को प्रभु जी आप आए हैं।। २।।

त्रिकुटी पार करवाकर दशवां महल दरसाया, दशवां महल दरसाया।

बेगमधाम ले जाकर प्रभु दर्शन कराऐ हैं।। ३।।

आत्मज्ञान देकर के भ्रम अज्ञान सब खोया, भ्रम अज्ञान सब खोया।

'भगवानदेव' गाऊँ महिमा, मेरे जगतार आए हैं।। ४।।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन

भजन नं॰ ४

सत्गुरू प्यारे से जिसका सम्बन्ध है।
उसको हर दम आनन्द ही आनन्द है।।
झूठी दुनियां से कर लो किनारा।
ले लो प्रीतम प्यारे का सहारा।।
उसकी राजी में जो रजामंद है।
उसको हर दम आनन्द ही आनन्द है।। १।।
उसको चिन्ता कभी न सतावे।
वह तो मस्ती में जीवन बितावे।।
उसका कट जा चौरासी का फंद है।
उसको हर दम आनन्द ही आनन्द है।। २।।
जिसकी वाणी में कोयल सी कूक हो।
जिसकी करनी में फूलों सी महक हो।।
जिनको सतसंग ही सतसंग पसन्द है।
उसको हर दम आनन्द ही आनन्द है।। ३।।
जिनने आत्मदर्शन पाया।
जिनने भ्रम अज्ञान नशाया।
'भगवानदेव' स्वयं आनन्द कंद है।। ४।।

भजन नं॰ ५

दरबार में मेरे सत्गुरू के दुःख दर्द मिटाए जाते हैं।
गर्दिश के सताए लोग यहां, सीने से लगाए जाते हैं।।
यह महफिल है दीवानों की, हर भक्त यहां दीवाना है।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन
भर–भर के प्याले प्रेम रस के यहां खूब पिलाए जाते हैं।। १।।
जग वालो ! मत घबराओं इस दर पे शीश झुकाने से।
इस दर पर ऐ नादानों ! सिर भेंट चढ़ाए जाते हैं।। २।।
जिन लोगों पर ऐ जग वालो ! हो खास इनायत सत्गुरू की।
उनको ही संदेशा जाता है, और वो ही बुलाए जाते हैं।। ३।।

भजन नं॰ ६

मेरे भ्रम किए सब दूर, मैं वारि जाऊं सत्गुरू के।
नामदान दे करके मेरा सोया भाग जगाया।
मूलाधार में नागिन जगाई, छः चक्कर दरसाया।
मेरा मोहगढ़ कर दिया चूर।। १।।
त्रिकुटी महल में चढ़ कर देखा, बिजली चमकें भारी।
तैल बाती बिन दीए चमकें, खेले खेल खिलारी।
घण्टा–शंख बाजें अनहद तूर।। २।।
दशवे महल में चमकते देखे, सिद्ध–मुनि दर्शन देवें।
रिमझिम रिमझिम अमत बरसे ज्योति जगमग होवें।।
जहां देखूं वहां चमके दूर।। ३।।
ओघट घाटी लांघ के सुरता बेगम देश में पहुंची।
'भगवानदेव' अमर पद पाया, पीया के संग राची।।
माया जाल पर डाल दई धूर।। ४।।

अनमोल वचन

प्रेम वीराने को गुलिस्तान बना देता है।
प्रेम परिचय को पहचान बना देता है।।
मैं आप बीती कहता हूं औरों की नहीं।
प्रेम इन्सान को भगवान बना देता है।।

कष्ट सारा जहां का मिट जाए।
आदमी गर आदमी जो हो जाए।।

आसान नहीं आबाद करना घर मोहब्बत का
यह उनका काम है जो खुद बरबाद होते हैं।

जो बात दवा से हो न सके, वह बात दुआ से होती है।
जब पूरा सत्गुरू मिल जाए, तो बाद खुदा से होती है।।

संसार में रखो ऐसा मेल, जैसे पानी पर रहता है तेल।

नेक बनने में सारी आयु लग जाती है।
बदनाम होने में एक दिन भी नहीं लगता।।

खुदा देता है जिनको खुशी, उनको गम भी होते हैं।
जहां बजती है शहनाई, वहां मातम भी होते हैं।।

गम की अंधेरी रात में दिल को न बेकरार कर।

गुरू कृपा से प्रभु मिलन
सुबह जरूर आएगी, सुबह की इंतजार कर।।

जो ईश्वर पर मिट गया, उसको मौत क्या मिटाएगी।
प्रेम राह पर चली मीरां को कोई ताकत रोक न पाएगी।।

ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में, मनुज नहीं लाया है।
अपना सुख खुद उसने अपने ही भुजबल से पाया है।।

फानूस बनकर जिनकी हिफाजत हवा करे।
वह शमां क्या बुझे जिसे रोशन खुदा करे।।

बाधाएं कब बांध सकी हैं, आगे बढ़ने वालों को।
विपनाएं कब रोक सकी हैं, पथ पर चलने वालों को।।

हमें रोक सके, यह जमाने में दम नहीं।
हम से जमाना है, जमाने से हम नहीं।।

तू जिन्दगी जी तो ऐसी जी कि सदा दिलशाद रहे।
तू दुनियां से चला जाए, तो दुनियां को तेरी याद रहे।।

क्या करेंगे ये तेज हवा के झोंके, हमें तूफानों से टकराना आ गया।
परवाह नहीं इन चिंगारियों की हमें शोलों पर चलना आ गया।।

गुरू आरती

ॐ जय गुरू ब्रह्म ज्ञानी, स्वामी जय गुरू ब्रह्म ज्ञानी।
तुमको निश दिन सेवत, सुर नर मुनि ध्यानी।
तुम हो, ब्रह्मा, तुम ही जग धाता–स्वामी तुम ही जग धाता।
शिव जी तेरे गुण गावे और माता भवानी।। १।।
राम–कृष्ण बुद्धदेव ने करी गुरू की सेवा – स्वामी करी गुरू की सेवा।
अमर हो गए जग में पा पद निर्वाणी।। २।।
गुरू बिन गति नहीं, मुक्ति नहीं पावे। स्वामी मुक्ति नहीं पावे।
गुरू बिन घोर अंधेरा ज्ञान नहीं जानी।। ३।।
विषय अज्ञान मिटाओं, ज्ञान की ज्योति जला। स्वामी ज्ञान की ज्योति जला।
भवसागर से तारों पकड़ के मम् पाणी।। ४।।
गुरू जी की आरती जो कोई नर गावे।
कहे 'भगवानदेव' स्वामी, वांछित फल पावे।। ५।।

अखिल भारतीय धर्म सभा के नियम

1. वेद, उपनिषद, स्मतियां, गीता, रामायण, भागवत, महाभारत आदि आर्ष ग्रन्थों, दर्शन तथा संतों–महापुरूषों द्वारा रचित सत् साहित्य का पठन–पाठन–स्वाध्याय।
2. ॐ, गायत्री मंत्र तथा अन्य प्रभु के पावन नामों, मंत्रों का जप करना, कराना।
3. योगाभ्यास द्वारा मानव को सर्वांगीण विकास।
4. मानव धर्म के दस सिद्धान्तों, नैतिक मूल्यों के प्रचार द्वारा समाज में धार्मिक क्रान्ति लाना।
5. यज्ञों द्वारा समूचे देश, विश्व पर्यावरण–वातावरण की शुद्धि। यज्ञों का जाल फैलाना।
6. भारत में गोहत्या बन्द करने, कानून द्वारा गोवंश वध पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए चेतना जगाना।
7. शराब, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, सुल्फा, गांझा, भांग, चरस, जुआ खेलना, मांस–अण्डों का सेवन आदि बुराइयों, दुर्व्यसनों, भ्रूण हत्या, सती–प्रथा, बाल–वद्ध विवाह आदि कुरीतियों का घोर विरोध तथा इनके खिलाफ जन चेतना जगाना।
8. व्यक्तिगत, राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करने के लिए व्यापक प्रचार करना।
9. देवभाषा संस्कृत के उत्थान के लिए प्रचार करना। संस्कृत को अनिवार्य विषय घोषित करवाना।
10. अंग्रेजी को केवल ऐच्छिक विषय रखे जाने तथा हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं के समुचित विकास हेतु प्रयास करना तथा अभियान चलाना।

लेखक की अन्य रचनाऐं

1. गायत्री चमत्कार
2. योग चमत्कार

3. यज्ञ चमत्कार
4. नाम चमत्कार
5. नवरात्र चमत्कार
6. विद्यार्थियों ! सावधान
7. मांस खाना पाप है।
8. शराब–नशे बुरी बला
9. ज्ञान नेत्र खोलने वाले दष्टांत
10. तप से सिद्धि
11. मैं कौन हूं? आत्मा की खोज
12. मेरी आत्म कथा
13. सुचरित्र से महान बन
14. गीता जीवन की कला
15. हरिरस पियो
16. वेदों का आनन्द चखो
17. श्री संकट मोचिनी भजनावली
18. धर्म से सब सुख (धार्मिक क्रान्ति)
19. ज्ञान विचार बिन्दु
20. प्राणायाम चमत्कार
21. पाप का नाश हो, धर्म की जय हो
22. कल भला हो भला
23. ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य
24. गुरू कृपा से प्रभु मिलन